विवेक-शिखा
श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी
वर्ष-१६
अगस्त-१९९७
अंक-८

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७, श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०, श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानवी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३. डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसबीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवनी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामबन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एम० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)

इस अंक में

पृष्ठ

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष —१६ | अगस्त—१९९७ | अंक—८

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ॰ केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जिसे प्यास लगी है, वह क्या गंगाजल को गँदला कहकर स्वच्छ पानी के लिए कुआँ खोदता है ? जिसे धर्म की तृष्णा नहीं लगी है वही 'यह धर्म ठीक नहीं', 'वह धर्म ठीक नहीं' कहते हुए बकवाद करता फिरता है। यथार्थ तृष्णा होने पर ये सब विचार नहीं उठते।

(२)

साधु-महात्माओं को उनके निकट के आत्मीयगण उतना नहीं मानते, दूर के लोगों में ही उनका अधिक आदर होता है। इसका क्या कारण है ? जादूगर का खेल देखने उसके घर के लोग नहीं जाया करते, पर दूर के लोग वह आश्चर्यचकित हो देखा करते हैं।

(३)

तुम राधा और कृष्ण को मानो या न मानो, किन्तु उनके एक दूसरे के प्रति आकर्षण को अवश्य स्वीकार करो। अपने हृदय में भगवान् के लिए उसी प्रकार की व्याकुलता लाने का प्रयत्न करो। उन्हें प्राप्त करने के लिए केवल व्याकुलता की आवश्यकता है।

(४)

केवल ईश्वर के लिए माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया जा सकता है। जैसे प्रह्लाद ने पिता के मना करने पर भी कृष्ण नाम लेना नहीं छोड़ा। माँ के मना करने पर भी ध्रुव तपस्या करने वन में गया। इससे उन्हें कोई दोष नहीं लगा।

(५)

मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि तुम मेरी बातों का एक आना भी कार्य-रूप में परिणत कर सको, तो तुम्हारी मुक्ति निश्चित है।

बाललीला : दो पद

—महाकवि सूरदास

(१)

हरि अपनें आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहीं मनहिं रिझावत।
बाँह उठाई काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत!
कबहुँक बाबा नन्द पुकारत, कबहुँक घर मैं आवत।
माखन तनक आपनैं कर लै, तनक वदन मैं नावत ॥
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल चरित, नित नितही देखत भावत ॥

(२)

मैं मोही तेरैं लाल री।
निपट निपट ह्वै कै तुम निरखौ, सुन्दर नैन विसाल री।
चंचल दृग अंचल-पट-दुति छवि, झलकत चहुँ दिसि झालरी ॥
मनु सैवाल कमल पर अरुझे, भँवत भ्रमर भ्रम चाल री
मुक्ता बिद्रुम नील पीत मनि, लटकत लटकन भाल री ॥
उपमा बरनि न जाइ सखी री, सुन्दर मदन गोपाल री।
सूर स्याम के ऊपर बारै, तन-मन-धन ब्रजबाल री ॥

स्वदेश एवं स्वजाति के कल्याणार्थ स्वामीजी का आह्वान

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[परिव्राजक स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था, "जब वापस आऊँगा तब समाज पर एक बम के धमाके के समान फट पड़ूँगा।" सचमुच, वही हुआ था। स्वामी जी जब शिकागो धर्ममहासभा में भाग लेने के उद्देश्य से समुद्र यात्रा कर रहे थे तब वे लगभग परिचयहीन एक निःसबल संन्यासी मात्र थे, किन्तु अपने ऐतिहासिक शिकागो विजय के पश्चात् जब वे भारत वापस आये, तब आये महान अभ्यर्थना के रथ पर चढ़कर जिसके समान अभ्यर्थना भारत के और किसी संन्यासी को इससे पहले कभी नहीं मिली थी। वे आये, उन्होंने देखा एवं जय की। देशवासियों के समक्ष उन्होंने अपना आग्नेय आह्वान प्रस्तुत किया। वह आह्वान था स्वदेश एवं स्वजाति के कल्याण के लिए आत्म निवेदन का आह्वान। उसी आह्वान एवं उसकी भूमिका तथा नरेन्द्रनाथ से विवेकानन्द बनने की भूमिका का अपूर्व विश्लेषण किया है परमपूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने, जिसे बंगला पत्रिका उद्बोधन के जनवरी १९९७ ई० के अंक से साभार ग्रहण किया गया है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर, अरुणाचल प्रदेश, में कार्यरत स्वामी चिरन्तनानन्द। —सं०]

रामकृष्ण संघ में श्रीरामकृष्ण एवं श्री श्री माँ का जो स्थान है, प्रायः उसी के समकक्ष आसन स्वामी विवेकानन्द का है। श्री रामकृष्ण एवं श्री श्री माँ को समझने के लिए स्वामी जी की दृष्टि से देखना होगा। कहा जाता है, श्रीरामकृष्ण जिस धर्मतत्व का मंत्र हैं, श्री श्री माँ एवं स्वामी विवेकानन्द उसी की व्याख्या हैं। उस व्याख्या को छोड़ देने से श्रीरामकृष्ण हमारी बुद्धि के लिए अगम्य ही रह जायेंगे। उनके अन्तरंग पार्षदों ने भी परम ज्ञानी, साधक अथवा महापुरुष यहाँ तक कि अवतार रूप में भी उनका दर्शन किया था, परन्तु उनके अवतीर्ण होने का उद्देश्य क्या था, उनके द्वारा जगत् का क्या कल्याण होगा, क्या महान परिवर्तन साधित होगा—यह रहस्य वे शुरू में जान नहीं सके। जान सके थे श्री श्री माँ एवं स्वामीजी। तात्कालिक दृष्टि में अति साधारण निरक्षर सरल व्यक्ति के भीतर जो असामान्य आध्यात्मिक ज्ञानभंडार एव ऐश्वर्य है उसका संधान उनके शिष्यों के बीच सर्वप्रथम श्री श्री माँ एवं स्वामी जी ने ही किया था।

हम यहाँ पर स्वामी जी के बारे में चर्चा करेंगे। श्रीरामकृष्ण के सर्वश्रेष्ठ जीवनीकार स्वामी सारदानन्द महाराज को स्वामीजी ने एकबार कहा था, ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की एक-एक बात को लेकर टोकरी-टोकरी भर दार्शनिक ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। एवं सचमुच ही ठाकुर के 'हाथी नारायण और महावत नारायण' की कहानी के तात्पर्य की

उन्होंने सात दिनों तक व्याख्या की थी। श्रोतागण समझ गये थे, स्वामी जी के समान ठाकुर की उक्तियों के दुर्ज्ञेय तत्वों का तात्पर्य-उद्घाटन करने की सामर्थ्य उन लोगों में नहीं है। उन्होंने ही कहा था, श्रीरामकृष्ण क्या अवतार हैं रे, वे भगवान के भी बाप हैं।'

फिर इसके विपरीत भी कहा जा सकता है, स्वामी विवेकानन्द को पहचाना था श्रीरामकृष्ण ने ही। शिक्षित, सुगायक, ब्राह्मधर्म के समर्थक अत्यन्त तार्किक, बेपरवाह, उग्र स्वभाव के तेजस्वी युवक नरेन्द्रनाथ को बहुत लोग जानते थे परन्तु श्रीरामकृष्ण के समान जौहरी ने प्रथम दर्शन में ही उन्हें अमूल्य रत्न के रूप में पहचाना था एवं अपने जगतकल्याण कार्य में अपने सहकारी के रूप में चुन लिया था। उनको अखण्ड के घर के सप्तर्षियों में सर्वश्रेष्ठ अनुभव किया था।

स्वामी जी के सम्बन्ध में ठाकुर ने कितनी बातें कही थीं। कहा था केशव के भीतर जिस प्रकार एक सूर्य विद्यमान है, नरेन के भीतर उसी प्रकार के अठारह सूर्य विद्यमान हैं। कहा था—बहुत देखा—कोई दशदल अथवा कोई शतदल किन्तु नरेन्द्र सहस्रदल पद्म है। कभी कहा है, नरेन्द्र साधारण नहीं है, नरेन्द्र जगन्माता के यंत्ररूप में शिक्षा देगा। इसके बाद उन्होंने अपने नरेन को कितने जतन से तैयार किया है। एक तरफ उनसे जैसे विभिन्न साधना करा रहे हैं वैसे ही दूसरी तरफ आदर करके खिला रहे हैं अथवा कभी तीव्र भर्त्सना कर रहे हैं। अनेक प्रकार से परीक्षा भी ले रहे हैं, किन्तु सब परीक्षा में नरेन्द्र सरलता से उत्तीर्ण हो रहे हैं।

उस समय न समझ पाने पर भी बाद में समझ था कि जगत के धर्मभाव, आध्यात्मिक दीनता को दूर करने के लिए, संसार के सर्वांगीण कल्याण के लिए उन्होंने एक अपूर्व यंत्र रूप में स्वामीजी को जानबूझकर तैयार किया था। 'बाद में' माने कब ? प्रथम—शिकागो की धर्ममहासभा में, उसके बाद अमेरिका एवं इंगलैण्ड में स्वामी जी के वेदान्त प्रचार में एवं उनके भारत वापस आने के बाद, जिसका शतवर्ष इस साल उद्यापित हो रहा है। स्वामी जी निर्विकल्प समाधि में मग्न रहना चाहकर तिरस्कृत हुए थे—"छिः ! तुम इतनी हीनबुद्धि हो ! आत्मसुख में, समाधिसुख में मग्न रहोगे ! कहाँ तुम विराट वटवृक्ष के समान होओगे, श्रान्त कलान्त पथिक जिसकी छाया में विश्राम लेंगे, आश्रय पायेंगे—वहीं तुम क्या स्वार्थी के समान निर्विकल्प समाधि चाह रहे हो !" स्वामी जी ने स्वयं ही बाद में कहा थ, "इच्छा थी हिमालय की किसी गुफा में समाधिमग्न रहूँगा, इस पागल ब्राह्मण के पल्ले पड़कर मेरा सब गया।"

श्रीरामकृष्ण स्वयं ही लोककल्याण के लिए समाधि के आनन्द का त्याग करना चाहते थे। समाधि के भाव में मग्न होते हुए वे बोले थे, "माँ मुझे बेहोश मत करना। मैं इन लोगों के साथ बात करूँगा।" जगत्कल्याण के लिए स्वामी जी को उन्होंने उत्सर्ग किया था एवं उनके जीवन को सदुपयोगी कर तैयार किया था। वे जानते थे एक विवेकानन्द तैयार करने से ही सब सार्थक होगा।

श्रीरामकृष्ण अपने अन्य शिष्यों को कहते विश्वास करने के लिए और स्वामी जी को कहते, "मेरी प्रत्येक बात को ठोक-बजाकर लेना। मैं बोल रहा हूँ इसलिए मान नहीं लेना।" अन्यों के साथ तर्क के लिए भी उनको उत्साहित करते और नरेन्द्रनाथ भी कदम-कदम पर उनके साथ तर्क करते थे। कहते थे, प्रत्येक बार ही उनसे परास्त होना पड़ा। बारम्बार उनकी परीक्षा ली थी—जो हमारी गुरुभक्ति की दृष्टि से हानिकर लगेगी। ठाकुर

कांचन स्पर्श नहीं कर सकते थे, स्वामीजी ने इसकी सत्यता के लिए उनके बिस्तर के नीचे रुपया छिपाकर परखा था। ठाकुर अशुद्ध व्यक्ति द्वारा छुई वस्तु खा नहीं पाते थे। एक दिन एक व्यक्ति द्वारा दिया जल स्पर्श नहीं किया। स्वामी जी ने बाद में पता लगाकर मालूम किया था कि वह व्यक्ति शुद्ध चरित्र का नहीं था। स्वामी जी ने स्वयं ही कहा था, गुरु के साथ इतनी लड़ाई शायद किसी शिष्य ने नहीं की है। सहज में पराधीनता स्वीकार करने वाले पात्र ही वे नहीं थे। वे एक दूसरे के परिपूरक थे। इसीलिए श्रीरामकृष्ण को जानने के लिए जिस प्रकार स्वामी जी की दृष्टि-भंगी के माध्यम से जानना होगा उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द को जानने के लिए श्रीरामकृष्ण की दृष्टिभंगी को माध्यम बनाना होगा। हम लोगों की खंडित एवं सीमित बुद्धि से उन लोगों को देखना अंधे द्वारा हाथी देखने के समान होगा।

स्वामी जी ने स्वयं ही स्वयं का मूल्यांकन एक स्वगतोक्ति के द्वारा किया था—"विवेकानन्द क्या कर गया इसे एक दूसरा विवेकानन्द ही आकर समझेगा।" तात्कालिक दृष्टि से ऐसा लगेगा कि यह घोर अहंकारी की अहंकारपूर्ण उक्ति है। परन्तु स्वामी जी अहंकारी नहीं थे। यह बात उन्होंने अपने आप से कही थी, उनके अगोचर में किसी ने यह सुना था।

श्रीरामकृष्ण जिस प्रकार जगन्माता के स्वरूप हैं, स्वामी विवेकानन्द भी उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण के नवीन एवं अपेक्षाकृत सहज संस्करण हैं। उनकी सभी उक्तियाँ एवं काम-काज ठाकुर के आदर्श की विशद व्याख्या हैं। ठाकुर उनको सहस्रदल कमल कहते थे। कमल अथवा पद्म भक्ति का प्रतीक है। यद्यपि स्वामी जी के भीतर भक्ति की पराकाष्ठा थी, फिर भी उनकी भक्ति के ऊपर वेदान्तिक ज्ञान का मानो एक कठोर आवरण था। उन्होंने ही सर्वप्रथम हमलोगों को सुनाया, तैंतीस करोड़ देवताओं के ऊपर विश्वास करके स्वयं पर यदि विश्वास न रहे तो कोई उन्नति नहीं होगी। कहा था, इतने देवी-देवताओं के सामने सिर झुकाते-झुकाते सिर एकदम ही झुक गया है। स्वयं के भीतर जो शक्ति है पहले उसे जगाना होगा। कहा था, जिसका स्वयं पर विश्वास नहीं वही नास्तिक है। धर्म के बाह्य आचार-विशेषकर छुआछूत की उन्होंने तीव्र भर्त्सना की है। आँख बंद कर पशु की पूँछ पकड़कर बैकुण्ठ में जाने के समान धर्म के अनुसरण का उन्होंने उपहास किया है।

स्वामी विवेकानन्द एक ऐसे समय में आविर्भूत हुये थे जब शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग के मध्य विदेशी शिक्षा के फलस्वरूप स्वदेशी आचार-विचार, रीति-रिवाज, जीवन दृष्टि सम्पूर्णतः परित्यक्त एवं उपहास के विषय बन गये थे। वहाँ तब नास्तिक-वादी डिरोजिऊ की नवीन विचारधारा का आधि-पत्य था। दूसरी ओर रक्षणशील प्राचीनपंथी गण युगव्यापी संस्कारों को रेत के बाँध से जकड़ कर पकड़ रखने की चेष्टा कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में भावद्वन्द्व के कारण विचलित होना स्वाभाविक है। परन्तु आश्चर्य की बात है, स्वामी जी को कोई—कुछ भी विचलित नहीं कर सका। प्राच्य एवं पाश्चात्य—दोनों भावधाराओं को देश के प्रयोजनानुसार अंशतः ग्रहण एवं वर्जन के द्वारा उन्होंने स्वयं का पथ—निर्धारण किया था। पाश्चात्य का वैज्ञानिक ज्ञान, बुद्धि, युक्ति, कारीगरी विद्या एव सांसारिक समृद्धि की उन्होंने प्रशंसा की, किन्तु उनकी आध्यात्मिक दीनता ने उनको व्यथित किया है, जिसके लिए उन लोगों को भारतवर्ष के पास आना ही पड़ेगा— यह बात उन्होंने बार-बार कही थी। उनको यह उपलब्धि हुई थी अमेरिका एवं इंगलैंड के प्रवासकाल में एवं

उस उपलब्धि का उन्होंने जोरदार शब्दों में जैसे विदेश में प्रचार किया था वापस आने के बाद वैसे ही स्वदेश में किया।

ठाकुर के देहावसान के बाद स्वामी जी ने रमता जोगी बनकर आसमुद्रहिमालय परिभ्रमण किया था, पहाड़-पर्वतों पर तपस्या की थी। उनके भीतर उस समय एक ऐसी प्रबल शक्ति का मंथन चल रहा था कि कहीं भी वे स्थिर नहीं रह पा रहे थे। उसी समय उन्होंने यथार्थ भारतवर्ष को प्रत्यक्ष देखा। वे धनी-दरिद्र, राजा-भिखारी, पंडित-मूर्ख-सभी के साथ मिले थे। राजमहल से लेकर दरिद्र की पर्ण कुटीर तक में निवास किया था। सम्पूर्ण देश के साथ उनका साक्षात् परिचय हुआ जो उनकी भारत परिक्रमा का प्रमुख उद्देश्य था। भ्रमण करते-करते एक दिन आबू पहाड़ में स्वामी तुरीयानन्द के साथ मुलाकात होने पर स्वामी जी ने उनसे कहा था, भाई, मेरे धर्मजीवन में क्या उन्नति हुई है पता नहीं परन्तु मेरा हृदय विशाल हो गया है, अब सम्पूर्ण जगत के लिए मेरे प्राण रोते हैं।

ठाकुर का उद्देश्य पूर्ण हुआ। उन्होंने इसीलिए उनको तैयार किया था, प्रेरणा दी थी। मनुष्य के दुःख में वे गंभीर भाव से विचलित होंगे, मनुष्य का दुःख दूर करने का वे प्रयास करगे। मनुष्य के दुःखों से वे विचलित हुए। देखा भारत की कैसी भयानक दरिद्रता है, क्या दुर्दशा है! मात्र शारीरिक नहीं, आध्यात्मिक, नैतिक, बौद्धिक सब प्रकार से है। मनुष्य के स्वास्थ्य की दशा शोचनीय है. शिक्षा प्रायः नहीं के ही बराबर है। ऋषियों के वंशधर सब आज पशु के समान जीवनयापन कर रहे हैं। इन लोगों के पास धर्म की बात करने से कोई लाभ नहीं हैं। ठाकुर कहते थे, "खाली पेट से धर्म नहीं होता।" स्वामी जी ने उनको ही बात की प्रतिध्वनि की, पहले अन्नदान, विद्यादान, फिर धर्मदान। अन्नहीन को पहले अन्न देकर उसकी देह को पुष्ट करना होगा, उसके बाद शिक्षा देकर उसके मन को मार्जित करना होगा, तभी उनमें धर्म के सूक्ष्म तत्व को धारणा करने की योग्यता आयेगी। तब धर्मदान करके उनकी आत्मा को संजीवित करना होगा।

परन्तु वे निःसम्बल भिक्षा जीवी संन्यासी हैं। अकेले वे क्या करेंगे। उनके भीतर आसाधरण शक्ति का परिचय पाकर किसी-किसी ने उनको परामर्श दिया—इस देश में आपको कोई नहीं पहचानेगा, आपकी कदर नहीं होगी, आप विदेश जाइए। स्वामी जी तो स्वयं की कद्र चाहते नहीं थे! वे सोच रहे हैं, पाश्चात्य देश समृद्ध देश हैं। यदि उनके पास से कुछ धन सम्पत्ति पायी जाय अथवा धनसम्पत्ति संग्रह करने के पाश्चात्य कौशल को जानकर इस देश के मनुष्यों को इस सम्बन्ध में जानकारी दी जाये, तभी तो इस देश के गरीबों की सेवा में उसे लगाया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने अमेरिका जाने का निश्चय किया। परन्तु उनकी इच्छा होने से ही तो नहीं होगा न, गुरु का आदेश चाहिए। इसी समय उन्हें एक अनुभव हुआ। उन्होंने देखा कि, ठाकुर समुद्र के ऊपर से पैदल जा रहे हैं और हाथ के इशारे से स्वामी जी को बुला रहे हैं। मानो कह रहे हैं, "तुम आओ।" स्वामी जी मात्र ठाकुर के आदेश से ही संतुष्ट नहीं हुए, माँ भी यदि कहे तभी वे जाएंगे। श्री श्री माँ के पास उन्होंने पत्र लिखा। माँ ने कहा, बेटा, जाओगे नहीं तो क्या, यह ठाकुर की ही इच्छा है। तब स्वामी जी जाने के लिए राजी हुए।

परन्तु जाएंगे किस प्रकार? सहाय-सम्पत्ति कुछ नही है! किसी तरह से जाने का खर्च पाया। प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच कितना कठोर

संग्राम उनको करना पड़ा है ! किन्तु असाधारण धैर्य, तितिक्षा, पाण्डित्य, मेधा एवं सर्वोपरि आदर्श के प्रति ऐकान्तिक निष्ठा ने उनकी यात्रा सफल की थी। घूमकर-घूमकर अमेरिका एवं यूरोप के विभिन्न देशों को देखकर उन्हें लगा था, भारत में जिस प्रकार अन्नाभाव है, उसी प्रकार पश्चिम में धर्म का अभाव है। इतने ऐश्वर्य के बीच रहकर भी वे सांसारिक ऐश्वर्य से भी अधिक ऐश्वर्य की खबर नहीं रखते। आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में उनमें किसी प्रकार की चेतना नहीं है। इसीलिए उस समय स्वामी जी का लक्ष्य हुआ भारत की आध्यात्मिक पूँजी के साथ पाश्चात्य की शिक्षा-संस्कृति का समन्वय करना।

भारत पश्चिम से सांसारिक सम्पत्ति, तकनीकी विद्या, एवं वैज्ञानिक शिक्षा लेगा और पाश्चात्य को देगा अपना आध्यात्मिक ऐश्वर्य। दोनों के समन्वय से गढ़ उठेगा एक नया संसार। स्वामी जी का यह अवदान मात्र भारत के लिए ही नहीं बल्कि पाश्चात्य के लिए भी महान कल्याणकर है। स्वामीजी को यन्त्रस्वरूप बनाकर ठाकुर सम्पूर्ण विश्व में जो एक नवीन विचारधारा का प्रवर्तन करना चाहते थे उसका सूत्रपात हुआ। स्वामी जी के माध्यम से उन्होंने पाश्चात्य में भारत का अद्वैत, भारत की महिमा को प्रचारित किया। पाश्चात्य ने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक भारत की महिमा को स्वीकार किया। भारत में उसका अप्रत्याशित फल हुआ। सम्पूर्ण भारत मानो नींद से जाग उठा। वह जागरण और भी प्रचण्ड उत्साहपूर्ण हो गया जब स्वामीजी अपनी दिग्विजय के बाद भारत वापस पहुँचे।

स्वामीजी ने पश्चिमी देशों में कहा था, भारत को पाश्चात्य को कुछ देने को है, जिस प्रकार पाश्चात्य को है भारत को कुछ देने को। परस्पर का आदान-प्रदान एवं सहयोगिता छोड़कर कोई बचेगा नहीं। सभी को एक साथ आगे बढ़ जाना होगा—जिसका मुख्य उद्देश्य होगा आध्यात्मिक अनुभूति। इसके लिए ऐसे एक समाज का निर्माण करना होगा जो मनुष्य को आध्यात्मिक अनुभूति के शीर्ष तक ले जा सके। यह हुआ स्वामी विवेकानन्द का आदर्श—जहाँ आत्मशक्ति एवं आत्मसमर्पण का मिलन हुआ है।

भारत वापस आकर उन्होंने देशवासी को सचेतन करने के लिए कोलम्बो से काश्मीर तक की परिक्रमा की। 'शिवज्ञान से जीव सेवा' का अभिनव धर्म-संगठन—रामकृष्ण मिशन की प्रतिष्ठा की। देशभर में एक महाजागरण शुरू हुआ। उनका वह शुरू किया हुआ कार्य अभी भी परिपूर्ण रूप नहीं ले पाया है। विशेषकर आज चारों ओर यह मारकाट, रक्तपात, हिंसा एवं अलगाववाद के परिवेश में स्वामी जी की अत्यधिक आवश्यकता है। आवश्यकता है पृथिवी को कलुष-मुक्त करने की, हिंसा से उन्मत्त पृथ्वी पर शान्ति-वारि सिंचन करने की, और हमारे हताशाग्रस्त मन में आशा का संचार करने की। स्वामी जी को हम जितना पढ़ते हैं उतना समझते नहीं, जितना समझते हैं उतना अनुसरण करते नहीं। वे यदि हमारे जीवन में मात्र स्मरणीय न होकर अनुसरणीय हों तब उनके स्वप्न का भारतवर्ष विश्वमंच में श्रेष्ठ आसन ग्रहण करेगा। उनके ऐतिहासिक स्वदेश प्रत्यावर्तन के शतवर्ष में उनके स्वदेश प्रेम के स्वरूप का, उनके द्वारा प्रचारित नववेदान्त के तात्पर्य का एवं उनके जगत्-कल्याण का मूल दर्शन एवं प्रेरणा के उत्स का हम लोगों को गहन रूप से मनोनिवेश करना होगा। उनके स्वप्न का भारत-वर्ष गढ़ने का सपना स्वीकार करना होगा। ईर्ष्या-द्वेष नहीं, परस्पर के दोषदर्शन नहीं, आज जरूरत है स्वामी जी के आह्वान में आवाज मिला-कर स्वयं को 'मनुष्य' बनने एवं भारत को प्यार

करके भारत गढ़ने की। आज भारत के लिए आत्म-निवेदन के आह्वान का हम लोगों को प्रत्युत्तर देना होगा। आज से एक सौ वर्ष पहले भारत वापस आने के बाद मद्रास में 'भारत का भविष्य' नामक अपने विख्यात भाषण के उपसंहार में स्वामीजी ने जो आह्वान देश एवं जाति के उद्देश्य से प्रस्तुत किया था, एक सौ वर्ष बाद हम लोगों के जीवन में वह और भी प्रासंगिक हो उठा है :—

"जीवन क्षणस्थायी, किन्तु आत्मा अविनाशी एवं अनन्त है; अतएव जब मृत्यु निश्चित है, तब आओ, एक महान आदर्श लेकर उसमें ही समग्र जीवन नियोजित करें। यही हमारा संकल्प हो।"

स्वाधीनता की पचासवीं वर्षगांठ के अवसर पर

स्वामी विवेकानन्द और भारत का भविष्य

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज
(रामकृष्ण मठ, हैदराबाद)

(स्वामी रंगनाथानन्दजी रामकृष्ण मठ मिशन के उपाध्यक्ष हैं। उनका मूल अँगरेजी लेख 'डेली गजट', करांची के स्वाधीनता दिवस विशेषांक में १५ अगस्त १९४७ को प्रकाशित हुआ था। तब वे करांची-स्थित रामकृष्ण मिशन के प्रमुख थे। आज उस लेख को हिन्दी में रूपान्तरित कर प्रकाशित करने का कारण यह है कि जिस मुसलिम साम्प्रदायिकता के फलस्वरूप पाकिस्तान का जन्म हुआ था, उसके सन्दर्भ में ५० वर्ष पूर्व लिखा यह लेख आज भी उतना ही सामयिक है, क्योंकि भारत में मुसलिम साम्प्रदायिकता की आग बुझी नहीं है, वह केवल दबी हुई सुलग रही है और अवसर पाते ही भड़क उठती है। इस समस्या के सन्दर्भ में विद्वान् लेखक ने जो सशक्त चिन्तन किया है, वह सबके लिए मननीय है। मूल लेख का हिन्दी में रूपान्तर किया है ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ने।—स०)

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, १५ अगस्त १९४७ उसके एक युग का समापन हैं और दूसरे युग का विहान।

प्लासी के साथ १७५७ में जो विदेशी प्रभुत्व प्रारम्भ हुआ था, आज ठीक १९० वर्ष बाद उसका अन्त हो गया। भारत के सुदीर्घ इतिहास की पृष्ठ-भूमि में देखने पर राजनैतिक गुलामी का यह युग एक अल्प-सा अन्तर्काल है। हमारे इतिहास में इस अन्तर्काल के यथार्थ महत्त्व का मूल्यांकन तभी हो सकता है, जब हम उससे समय में कुछ दूरी पर स्थित हों। तभी घटनाओं का वस्तुपरक विचार सम्भव हो सकता है। महान् मनीषियों के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए घटनाओं को जीते हुए उनका निरपेक्ष विचार करना कठिन ही होता है। अतएव ऐसी घटना का रूप इस प्रकार के मनीषी के लिए उससे भिन्न होगा, जो एक

सामान्य व्यक्ति को दिखायी देता है।

एक सामान्य व्यक्ति के लिए राजनैतिक गुलामी कोई विशेष अर्थ नहीं रखती, यदि वह उसके दैनिक जीवन के क्षुद्र दायरे को प्रभावित न करती हो। पर जब वही व्यक्ति राजनैतिक रूप से जागरूक हो जाता है, तो ऐसी गुलामी उसे असह्य हो उठती है। तब वह उसके स्वातंत्र्य और स्वाभिमान के नवोपलब्ध मूल्यों के साथ टकराने लगती है। इन मूल्यों के प्रति सजगता के उदय से वह एक राजनैतिक अस्तित्व बन जाता है—एक ऐसा अस्तित्व, जो स्वतंत्रता को केवल भौतिक और शारीरिक सुरक्षा से अधिक महत्त्व देता है। यहाँ से मनुष्य के जीवन में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की स्फुरणा प्रारम्भ होती है और उसके प्रारम्भिक नैतिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विकास शुरू होता है। यही आगे चलकर जीवन में राजनैतिक शिक्षा तथा स्वातंत्र्यरूप मूल्य के तीव्रता से अनुसरण के फलस्वरूप उस परिपूर्ण सामाजिक परिणाम के रूप में सामने आता है, जिसे हम 'नागरिक' कहते हैं। इस नागरिक का विकास ही राजनीति का अन्त है और साथ ही सर्वोच्च सामाजिक लक्ष्य भी।

दुहरा आक्रमण

१९वीं शताब्दी की राजनैतिक दासता को भारत के बहुसंख्य हिन्दुओं और मुसलमानों ने न्यूनाधिक मात्रा में स्वीकार कर लिया था, क्योंकि वे इसमें शान्ति के युग का सूत्रपात देखते थे। उन्हें विगत शताब्दियों की अनिश्चितताओं का कड़वा अनुभव था और वे ब्रिटिश सल्तनत में इन अनिश्चितताओं से मुक्ति देखते थे। उन्हें लगता था कि इसमें हमारा जान-माल सुरक्षित है। पर यह तो मात्र एक स्थिति थी और वह भी अल्पकाल के लिए। राजनैतिक गुलामी दो प्रकार से चुनौती बन जाती है—एक तो तब, जब वह सांस्कृतिक विरासत की जड़ खोदने का प्रयास करती है और दूसरे तब, जब वह लोगों के कार्य-कलापों पर नियंत्रण लगाना शुरू करती है। जिन लोगों में तेज और शक्ति का अन्दरूनी भाण्डार होता है, वे तो इस चुनौती का सामना करने के लिए खड़े हो जाते हैं, पर जिन लोगों में ऐसा बल नहीं होता, वे इसे सहज रूप से स्वीकार कर लेते हैं और एक जाति के रूप में विश्व के इतिहास से मिट जाते हैं, फिर भले ही वे लोग अलग-अलग व्यक्ति के रूप में नयी आत्मा और नया शरीर लेकर जीते रहते हों। विश्व के इतिहास में इस प्रकार की जाति का अभाव नहीं है। भारत को दो दिशाओं से चुनौती का सामना करना पड़ा—एक तो सांस्कृतिक और दूसरी, सामाजिक-राजनीतिक। भारत इन चुनौतियों का सामना करने के लिए उठ खड़ा हुआ, पहले संस्कृति के क्षेत्र पर और फिर राजनीति के। मोटे तौर पर १९वीं शताब्दी का दूसरा भाग सांस्कृतिक मुठभेड़ की गाथा कहता है, जबकि इस शताब्दी का पहला भाग राजनैतिक मुठभेड़ की। और इससे भारतीयों तथा उनकी विरासत की अन्तर्निहित शक्ति का परिचय मिलता है। इस उभयविध प्रक्रिया और उससे इतने अल्प समय में प्राप्त अभूतपूर्व सफलताओं की रोमांचक गाथा में हाल के भारतीय इतिहास का रोमांस तथा विश्व के लिए उसका महत्त्व समाया हुआ है।

सांस्कृतिक चुनौती

पश्चिम से आयी नव सांस्कृतिक चुनौती का सामना करने के लिए उठ खड़े हुए भारत की एक उल्लेखनीय विशेषता पर अच्छी तरह बल दिया जाना चाहिए; क्योंकि उसमें एक ऐसी प्रबल संश्लेषण-शक्ति का समावेश है, जिसने उसे दूसरी चुनौती का सामना करने में अर्थात् राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में अपनी सुगन्धि प्रदान की

है, और जो उसके गृह तथा वैदेशिक सम्बन्धों के क्षेत्रों में भी अपने सफल उपयोग की क्षमता रखती है। यह उल्लेखनीय विशेषता है उसका स्वीकृति, समन्वय और ग्रहण का स्वर—अपवर्जन का नहीं। यह नये भारत की जागरूकता और गतिशीलता का वैशिष्ट्य है। पूर्व की अवस्थाओं में जो मात्र प्रतिक्रियावादी (केवल शाब्दिक अर्थ में प्रयुक्त) था, बहुधा अपराध की भावना से जुड़ा हुआ और निषेधात्मक था, वह विचारों के एक रचनात्मक आन्दोलन में रूपान्तरित हो जाता है और किसी भी परखे हुए मानवीय मूल्य को दृढ़तापूर्वक अनुमोदित करने तथा संश्लिष्ट करने में तत्पर हो जाता है, भले ही वह मूल्य पूर्व में विकसित हुआ हो या पश्चिम में, वह वैज्ञानिक हो या धार्मिक, राजनैतिक हो या सामाजिक।

स्वामी विवेकानन्द हमारे इस सांस्कृतिक आन्दोलन के सबसे प्रभावी प्रवक्ता और प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं। वे उन लोगों में से एक थे, जिन्होंने अँगरेजों के साथ भारत के सम्बन्ध को हमारे समाज की जमी हुई गतानुगतिकता की परतों एवं सभ्यता को तोड़ने का सशक्त साधन माना, जिससे 'हमारा समाज उदार हो सके। उनके व्यक्तित्व में अतीत और वर्त्तमान का, प्राचीन विद्या और आधुनिक ज्ञान का सुन्दर योग हुआ था। वे हमारे अतीत के गौरव से परिचित थे, हमारा आज का पतन उनके हृदय की गहराइयों पर चोट करता था। वे कट्टर हिन्दू थे; साथ ही वे दूसरे धर्मों के प्रति भी आदर और श्रद्धा रखते थे। इसलाम और ईसाई धर्मों के सामाजिक सन्देश से तथा उसका भारतीय जीवन और चिन्ताधारा के सन्दर्भ में जो मूल्य था, उससे उनकी अनुरक्ति थी। सर्वोपरि उनका हृदय आधुनिक विचारधारा के भाव से, विज्ञान के क्षेत्र में उसकी राजनैतिक एवं आर्थिक देनों से तथा जीवन और समाज के क्षेत्र में उसकी राजनैतिक एवं आर्थिक देनों से उद्दीप्त था। अन्त में, पर यह कम महत्त्व का नहीं था, वे आधुनिक सन्दर्भ में मानवी सम्वन्ध के अन्तर्राष्ट्रीय स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे। उनकी भूमिका ऐसे किसी प्रतिक्रियावादी देशभक्त की नहीं थी, जो अपने देश को दूसरी जातियों के संसर्ग से दूर ले जाना चाहता हो, अथवा जो दूसरे राष्ट्रों की स्वतंत्रता के ऊपर अपने राष्ट्रवाद का रथ हाँकना चाहता हो। वे भारत को प्यार करते थे, पर मानवता को भी वे समान उत्कटता से चाहते थे। अपने एक पत्र में वे पूछते हैं, "हमारे लिए भारत या इंग्लैण्ड या अमेरिका क्या है ?" और वे मानव की गरिमा में, जो संकीर्ण घरेलू दीवारों द्वारा विभक्त नहीं हुआ है, अपनी दृढ़ निष्ठा को उद्घोषित करते हुए आगे लिखते हैं, "हम उस ईश्वर के दास हैं, जो अज्ञानी के द्वारा 'मनुष्य' कहलाता है।" और हम इसमें अपनी ओर से जोड़ सकते हैं—"और जिसे अधिक अज्ञानी व्यक्ति हिन्दू, मुसलिम, ईसाई अथवा भारतीय, रूसी या अमेरिकन आदि कहता है।"

जवाहरलाल नेहरू स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व के इस पहलू के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करते हुए कहते हैं—"अतीत में अपनी जड़ लिये तथा भारत की विरासत के प्रति गौरव से भरे हुए स्वामी विवेकानन्द जीवन की समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोण में आधुनिक थे और वे भारत के अतीत तथा उसके वर्तमान के बीच एक सेतु के समान थे।" ('द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया', पृष्ठ ४००)।

नेहरू स्वयं अन्तर्राष्ट्रीयवादी थे, वे गहरी प्रशंसा करते हुए स्वामी विवेकानन्द के भाषणों से मानव जाति की एकता के सम्बन्ध में निम्नलिखित उद्धरणों को प्रस्तुत करते हैं—

"राजनीति और समाज शास्त्र के क्षेत्र में भी, जो समस्याएँ बीस वर्ष पहले मात्र राष्ट्रीय थीं, उन्हें अब केवल राष्ट्रीय आधार पर ही हल नहीं किया जा सकता। वे विशाल आकार, विराट् रूप धारण कर रही हैं। उनका समाधान तभी हो सकता है, जब उनको अन्तर्राष्ट्रीय आधार के अधिक व्यापक आलोक में देखा जाय। आज की माँग है—अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ, अन्तर्राष्ट्रीय मेल-जोल, अन्तर्राष्ट्रीय कानून। यह सामाजिक ऐक्य प्रदर्शित करता है। कोई देश तब तक प्रगति नहीं कर सकता; जब तक उसके पीछे-पीछे सारा संसार प्रगति नहीं करता। और यह दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होता जा रहा है कि किसी भी समस्या का समाधान वंशीय या राष्ट्रीय या संकीर्ण आधार पर कभी नहीं हो सकता। प्रत्येक विचार को इतना व्यापक होना चाहिए कि वह समूचे संसार को ढक ले, प्रत्येक महत्त्वकांक्षा को इतना बढ़ाना चाहिए कि वह समूची मानवता को—नहीं, समूचे जीवन को ही अपनी व्याप्ति में ले ले।" ('द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया', पृष्ठ ४०१-२ पर उद्धृत)।

स्वामी विवेकानन्द इस कसौटी पर भारत के हाल के बीते अतीत को कसते हुए तथा अपने देश-वासी हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक सीख और चेतावनी देते हुए घोषणा करते हैं—

"मुझे इसका पूरा विश्वास हो गया है कि कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र अपने को दूसरों के समुदाय से अलग रखकर नहीं जी सकता, और जब भी महानता, नीति अथवा पवित्रता की थोथी आड़ में ऐसा प्रयत्न किया गया है, उसका परिणाम अपने को अलग रखनेवाले राष्ट्र के लिए हरदम सर्वनाशी हुआ है। हमारे पतन का कारण यह रहा कि हमने संसार के अन्य राष्ट्रों से अपने को विच्छिन्न कर लिया। इस रोग को दूर करने का एकमात्र रास्ता है अन्य राष्ट्रों की धारा में पुनः अपने को ले आना। गति ही जीवन का चिह्न है।" ('द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया', पृष्ठ ४०२ पर उद्धृत)।

जो शब्द ऊपर उद्धृत किये गये हैं, वे ५० वर्ष (अब १०० वर्ष) पहले उद्गीरित हुये थे; पर उनमें आज भी वही ताजगी और शक्ति है। स्वामी विवेकानन्द के दिनों में विश्व की घटनाओं में भारत सक्रिय तत्त्व नहीं था। उसकी अतीत की गरिमा भले ही कई पश्चिमी विद्वानों की सहानुभूतिपूर्ण चर्चा और अध्ययन का विषय रही हो, पर सामान्य तौर पर भारत की दुरवस्था विश्व के लिए एक तरस का ही विषय थी। उसकी स्वयं की सन्तानें भी अपनी इस वृद्ध और जीर्ण माता के प्रति एक प्रकार से तरस ही खाती थीं।

पर यह सब शीघ्र बदल गया। अपने विजित होने का आघात और गुलामी की ग्लानि ऐसी थी, कि उसने उसकी भीतरी ज्वाला को बुझाने के बदले भड़का दिया। कई राष्ट्रों में पराजय ने उनकी भीतरी आग को दबा दिया। भारत के लिए भी कई लोगों ने ऐसा ही सोचा था, पर यहाँ पर उल्टा हुआ। पराधीनता की कचोट ने ऐसी आग भड़कायी कि विचार और सक्रियता मानो भारत के हृदय से फूट निकले और फलस्वरूप राष्ट्रीय पुनरुत्थान की यथार्थ प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ। यह जागरण पहले आत्म-प्रत्यय की प्रक्रिया से गुजरा और तदनन्तर आत्माभिव्यक्ति की।

गृहनीति

भारत के सन्दर्भ में आत्म-प्रत्यय की प्रक्रिया को आज १५ अगस्त १९४७ को चोटी पर पहुँचा माना जा सकता है, जब उसे पूर्ण राजनैतिक आजादी हासिल हुई है। इससे जो शक्ति-ऊर्मियाँ निःसृत हुई हैं, वे अब से रचनात्मक आत्माभि-व्यक्ति की और भी सघन प्रक्रिया में कार्यशील

बनेंगी। विवेकानन्द एक व्यक्ति के रूप में भारत को विश्व सांस्कृतिक शक्तियों की धारा में ले गये। विवेकानन्द एक भाव के रूप में भारतवासियों को एक सूत्र में ग्रथित कर भारत को राष्ट्रों के विश्व समुदाय में प्रवेश करने के लिए मार्गदर्शन देते हैं। विवेकानन्द की धारणा थी कि भारत में इतिहास से उपलब्ध वह आवश्यक क्षमता है, जिसके बल पर वह राष्ट्रों के नैतिक नेता के रूप में कार्य कर सकता है। आज की नयी जागतिक अवस्था भी विश्व के राष्ट्रों की ऊर्जाओं को समुचित दिशा प्रदान करने के लिए एक सुदृढ़ और सबल नैतिक पथ-प्रदर्शन की माँग करती है। पर वे यह भी मानते थे कि भारत तब तक वह भूमिका नहीं ग्रहण कर सकता और उसका प्रभावी रूप से निर्वाह नहीं कर सकता; जब तक कि वह पहले अपने भीतर ही कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं कर लेता। यही उनका वह विषय-क्षेत्र है, जिसे उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में 'गृहनीति' कहा है। इसके द्वारा वह जिस विश्व-उत्तरदायित्व को स्वीकार कर उसका निर्वाह करेगा, उसे वे अपनी 'विदेश नीति' कहा करते थे।

विश्व घटनाओं में भारत की प्रभावी सहभागिता की तीन पूर्व शर्तें हैं—राजनैतिक स्वातन्त्र्य, आर्थिक उन्नति और सामाजिक सुदृढ़ता। आज प्रथम शर्त की पूर्ति के साथ अब दूसरी और तीसरी शर्तों को पूरा करने का समय आया है। विवेकानन्द पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने उस हानि की ओर हमारी दृष्टि आकर्षित की, जो आर्थिक पिछड़ेपन और सामाजिक विभेद के कारण हमारे देशवासियों के आध्यात्मिक और नैतिक व्यक्तित्व को हुई है। अनैच्छिक निर्धनता, उनके मत से, अनाध्यात्मिक और अनैतिक है। धर्म, उनकी दृष्टि में, खाली पेटवालों के लिए नहीं है। सामाजिक विषमताएँ और अस्वास्थ्यकर धर्म-तंत्र राज-निकाय पर कोढ़ हैं। अपने भारत के भ्रमण में वे व्यक्तिगत रूप से भारत के क्षीणकाय और विच्छिन्न कर दिये गये शरीर और मन के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। इससे पूर्व अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण के माध्यम से तथा भारत के साहित्य और इतिहास के अपने अध्ययन के द्वारा वे भारत की अमर और शाश्वत आत्मा के सम्पर्क में आये थे। उन्होंने पाया कि आदर्श और यथार्थ सर्वथा भिन्न हैं, और उन्होंने अपनी समूची शक्ति यथार्थ को आदर्श तक पहुँचाने में लगा दी। आधुनिक भारत की समस्या को ढूँढ़ निकालने और उसका समाधान पाने के लिए उन्हें तीव्र दुःख और वेदना में से गुजरना पड़ा। अपने देशवासियों को अपनी टीस और अपना निश्चय प्रदान करने में उन्हें अकाल मृत्यु का सामना करना पड़ा। आज भारत के मानस और मुखड़े पर विवेकानन्द के हृदय और निश्चय की निर्मूल छाप दिखायी पड़ती है। विवेकानन्द की प्रतिभा—सम्पन्न अँगरेज शिष्या भगिनी विवेदिता लिखती हैं—

"फिर भी गुरुदेव के स्वभाव में एक बात बहुत गहरी थी, जिसके लिए वे कभी समझौता करना नहीं जान सके। और वह थी अपने देश के लिए उनका प्यार और उसके दुःख-कष्टों के कारण उनका रोष। उन सभी वर्षों में जब मैंने उन्हें लगभग प्रतिदिन देखा, भारत का विचार उनके लिए श्वास-प्रश्वास की हवा के समान था। सत्य है, वे नींव में काम करने वाले व्यक्ति थे। उन्होंने न तो 'राष्ट्रीयता' शब्द का प्रयोग किया, न ही 'राष्ट्र-निर्माण' के युग की उद्घोषणा की। उनकी दृष्टि में 'मनुष्य-निर्माण' ही करणीय कार्य था। पर वे जन्म से ही एक प्रेमिक थे और उनकी मातृभूमि ही उनके हृदय की रानी थी। उनका हृदय भारत से सम्बन्धित किसी भी बात के लिए उस संवेदनशील घण्टे की तरह था, जो हर आवाज से कम्पित हो थरथरा उठता है। ऐसी

कोई भी सुबक उसकी तहों की सीमा में नहीं थी; जो उनमें सहानुभूतिपूर्ण झाई उत्पन्न न कर सकी हो। ऐसा कोई भयपूर्ण चीत्कार नहीं था, दुर्बलता की ऐसी कोई थरथरी नहीं थी, वेदना से उत्पन्न कोई आह नहीं थी, जिसे उन्होंने नहीं जाना और समझा हो। वे उसके दोषों के प्रति निर्मम थे, उसके सांसारिक बुद्धि के अभाव के प्रति निष्ठुर थे, पर यह केवल इसलिए कि वे इन दोषों को अपना ही समझते थे। और इसके विपरीत, ऐसा कोई भी नहीं था, जो उसकी महानता के स्वप्न में इतना खोया हुआ हो।" ('द मास्टर ऐज आई सा हिम', पृष्ठ ४६-५०)।

लोगों का ऐक्य

आज जब कि देश विदेशी सत्ता से मुक्तिदिवस मना रहा है, तो यह अच्छा होगा कि हम स्वामी विवेकानन्द का तथा देश के भविष्य के सम्बन्ध में उनकी धारणा का स्मरण करें। वे भारतवासियों की एकता के प्रति विश्वासी थे। उनका विश्वास था कि हमारी संस्कृति एक खूबसूरत पच्चीकारी के समान है, जिसमें हिन्दू, मुसलिम और अन्य संस्कृतियों का सुन्दर मेल है। उनका यह भी विश्वास था कि हिन्दू और मुसलमान को एक दूसरे से कुछ सीखना है, जिससे वे केवल अधिक अच्छे हिन्दू या अधिक अच्छे मुसलमान ही नहीं बनेंगे, वल्कि अधिक अच्छे मनुष्य बनेंगे, जोकि अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका धर्म था 'मनुष्य-निर्माण', इसलिए उन्होंने अपने देशवासियों से पहल की कि वे अपने संकीर्ण प्रेम और संकीर्ण घृणा का त्याग करें ओर उस समग्रता का विकास करें, जो चरित्र की पूर्णता है। उसी सांस में उन्होंने हिन्दुओं का आह्वान किया कि वे जाति और सम्प्रदाय की तंग निष्ठाओं का त्याग करें और मनुष्य में जो दिव्यता निहित है, उसकी पूर्णता और समग्रता का विकास करें। उनकी धारणा थी कि लोकतंत्र का आधुनिक सिद्धान्त और व्यवहार मनुष्य-निर्माण के इस धर्म के लिए प्रभावी रूप से सहायक हो सकता है, क्योंकि वह स्वातंत्र्य, समानता और व्यक्तित्व की पावनता में विश्वास करता है। इसीलिए उन्होंने लोकतंत्र की भावना का पोषण किया।

लोकतंत्र की शक्ति नागरिक में निहित है। भारत का लोकतंत्र यह चाहता है कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी और अन्य लोग सही मायने में नागरिक बन जायँ तथा ऐसे कुछ आधारभूत मूल्यों के प्रति अपनी निष्ठा रखें, जो सार्वभौम और मानवीय हों। यह महान् प्रक्रिया विश्व के महान् धर्मों की प्रेरणाओं से पर्याप्त पोषण प्राप्त करेगी। वास्तव में, उस मार्गदर्शन और प्रेरणा के अभाव में, जिसे केवल धर्म ही दे सकता है, राजनैतिक, यहाँ तक कि आर्थिक लोक-तंत्र भी बहुत दूर नहीं जा सकता; यही क्यों, वह गलत दिशा में भी जा सकता है। पर उस प्रेरणा को धर्म के मतवादों और रूढ़ियों में नहीं खोजना है, अपितु उसे उनके तात्त्विक सत्यों के भीतर से प्राप्त करना है। लोकतंत्र को नैतिक और आध्यात्मिक स्तरों तक उठाने का जो कार्य है, वह स्वतंत्र भारत के कन्धों पर निक्षिप्त है।

मूलभूत प्रेरणा

ऊपर की बातें कुछ अनोखी-सी लग सकती हैं और आज के भारत के सन्दर्भ में कुछ साहसिक भी। हमारी स्वतंत्रता हमारे पास पर्याप्त दुःख लेकर आयी है; आज जो आवाज स्वतंत्रता की उद्घोषणा करेगी, वह हमारे दो राजनैतिक टुकड़ों में विभाजन की भी घोषणा करेगी। विभाजन तो वैसे भी दुःखदायी होता है, हम उसे यह मानकर और अधिक दुःखदायी नहीं बनाएँगे कि वह राज-नैतिक और प्रशासनिक से अधिक और कुछ है। ऊपर-ऊपर से यह सांस्कृतिक और धार्मिक

आधारों पर हुआ विभाजन दिखायी देता है। पर यदि हम इसे निकट से देखें, तो पता चलेगा कि यह राजनैतिक कारणों पर आधारित मात्र एक राजनैतिक विभाजन हैं, पर उसने संस्कृति और धर्म के बिल्ले लगा लिये हैं। इस विभाजन ने अवश्य ही धार्मिक और साम्प्रदायिक उन्मत्तता को जन्म दिया है; इसने अपने पीछे धन-जन की महती बरबादी छोड़ी है। पर यह सब यह प्रमाणित नहीं करता कि इस्लामी संस्कृति और धर्म को हिन्दू धर्म और संस्कृति की छूत से बचाने के लिए एक अलग स्वतंत्र देश चाहिए; वह इतना ही प्रमाणित करता है कि मुस्लिम बौद्धिक वर्ग के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने के लिए एक अलग देश चाहिये। जब विभाजन इस इच्छा की पूर्ति कर देगा, तो वह एक मूलभूत प्रेरणा के अभाव में अपना ही खण्डन करेगा। जनता तो एक ही है, भले ही वह एक स्वतंत्र देश में हो या दो में। फलस्वरूप, भारत और पाकिस्तान राष्ट्रों के पीछे एक वृहत्तर भारत बना रहेगा। यह वृहत्तर भारत दोनों देशों की संरचना और क्रिया-कलाप पर अवश्य ही अपना प्रभाव डालेगा। भारतीय जनसंख्या की सामाजिक बनावट अपने सामाजिक विधान और राजनैतिक शासन पर अवश्य ही अपने प्रभाव का विस्तार करेगी। इसलिए जो भी मूलभूत प्रेरणा है, वह एकत्व की ही ओर है; सामाजिक शक्तियाँ केवल इसी दिशा में जा सकती हैं; विभाजन के बावजूद, दोनों देशों में अल्पसंख्यकों की जो समस्या है, वह एक ऐसा सशक्त तथ्य है, जो अन्ततोगत्वा दोनों देशों को एक में जोड़ने का काम करेगा, भले ही आज ऊपर से बातें विपरीत दिखायी देती हैं। और यह एकता उसकी अपेक्षा कुछ ऊँचे और अधिक टिकनेवाले स्तर पर होगी, जो राजनैतिक प्रयोजनों और पैंतरेबाजी से विगत कुछ दशाब्दियों में सन्धियों और सौदों के माध्यम से होती रही है। राजनीतिक दबाव ने हमें विभाजित किया है, पर सामाजिकता का दबाव हमें एक करेगा। सामाजिक और आर्थिक शक्तियों से शक्तिमान् हो संस्कृति इस प्रक्रिया को गति प्रदान करेगी, साथ ही विश्व-परिस्थितियों की वास्तविकताएँ भी इस कार्य में सहयोग करेंगी। यह प्रक्रिया वैसे तो समाज में हरदम चलती रहती है और सतत् अनेकता में एकता का सृजन करती है, पर भारत में एक बात यह हो गयी कि इस देश को एक अचिन्तनीय तीसरे कारण का सामना करना पड़ा और वह था एक विदेशी सत्ता का आधिपत्य, जो अपने संरक्षण और वर्धन के लिए स्वास्थ्य-कर राष्ट्रवादी शक्तियों को सतत् कुचलती रही। अब इस तीसरे कारण के दूर हो जाने से सामाजिक शक्तियों के प्रभावी खेल के लिए मैदान साफ हो गया है। यह विश्वास उन लोगों को टूटने से बचाकर रखे हुए है, जो विभाजन की टीस का अनुभव तो करते हैं, पर उससे मोहित या भ्रमित नहीं हुए हैं। ऐसे लोगों की संख्या अभी भी अधिक है, इसके अन्तर्गत मुस्लिम और हिन्दू दोनों कौमों के प्रभावी राजनैतिक दल हैं, अराजनैतिक समूह तथा व्यक्ति हैं। जब वर्तमान अवस्था की असामान्यताएँ दूर हो जाएँगी, जब तूफानी उन्माद और अन्धा बना देनेवाली घृणा का उपशम होगा, और भारत का आकाश खुलेगा, तब देश उपर्युक्त विश्वास और दृष्टि की सार्थकता और प्रयोजनीयता को पहचानेगा। तब कुछ स्थिर मतिमान लोगों का विश्वास बहुतों के लिए उत्साह का उत्सव बन जायगा और जनादेश से क्रमशः दोनों कटे हुए टुकड़े फिर से जुड़कर मिल जाएँगे।

आज देश के समक्ष यही कार्य है कि चुपचाप, दृढ़ कदमों से इस गौरवपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा करना। हमें अनुभव करना है कि राजनीति सामाजिक शक्तियों का खिलौना है। राज-

नीति की अपेक्षा समाज-शास्त्र अधिक बुनियादी है। सामाजिक शक्तियों के इस स्वस्थ विनियोग में, जिससे कि वे सामाजिक एकता का निर्माण कर सकें, देश को स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व और सन्देश से प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

मुसलमानों और अनुसूचित जातियों का आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नयन देश की सामाजिक शक्तियों के बीच सन्तुलन लाने का कार्य करेगा। हिन्दू समाज पर लोकतंत्र का प्रभाव उसमें व्याप्त विषमताओं को दूर करने का प्रयास करेगा और उसे समता के स्तर पर उठा लाने में सहायक होगा। सांस्कृतिक और आर्थिक उन्नयन से औसत मुसलमान साम्प्रदायिक और धर्मान्ध दुष्प्रचार का कम शिकार होगा तथा वह अपने धर्म के उन उपदेशों का कायल होगा, जो सार्वभौम और मानवीय हैं। आनेवाले कल के भारतीय मुसलमानों के समक्ष जो कर्त्तव्य अपेक्षारत है, वह है सहिष्णु इसलामियत की साधना और उसका प्रचार। हाल ही में उसकी जो विभाजनकारी शक्तियाँ प्रकट हुई हैं, उसमें जो नकारात्मक और वर्जनात्मक प्रवृत्तियाँ देखी गयी हैं, उन्हें निकालकर उनके स्थान पर उसकी एक करनेवाली उदात्त प्रवृत्तियों और कार्यक्रमों की स्थापना करनी होगी। संक्षेप में, इसलामी लोकतंत्र को इनसानी लोकतंत्र में विकसित होना होगा। ऐसे लोकतंत्र का हिन्दू समाज पर प्रभाव उस समाज और विश्व के लिए हितकारी होगा। विवेकानन्द का मत था कि हिन्दू धर्म का सौन्दर्य उसकी सामाजिक विषमताओं के द्वारा रौंद डाला गया है। व्यथा से वे चीख उठे थे—

"पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। प्रभु ने मुझे दिखा दिया है कि इसमें धर्म का कोई दोष नहीं है, वरन् दोष उनका है जो ढोंगी और दम्भी हैं, जो 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' सिद्धान्तों के रूप में अनेक प्रकार के अत्याचार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।" पुनः "दोष धर्म का नहीं है। इसके विपरीत तुम्हारा धर्म तो तुम्हें यही सिखाता है कि संसार भर के सभी प्राणी तुम्हारी आत्मा के विविध रूप हैं। समाज की इस हीनावस्था का कारण है, इस तत्त्व को व्यावहारिक आचरण में लाने का अभाव सहानुभूति का अभाव —हृदय का अभाव।" (विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खण्ड, पृ० ४०३-४, ४०२-३)

यदि इसलाम भारत में मित्र के रूप में और शान्ति लेकर आया होता, तो भारत का इतिहास तथा भारतीय मुसलिम एवं हिन्दू समाज का स्वभाव ये सब भिन्न होते। तब उसने हिन्दू धर्म के सामाजिक सौध के शुद्धिकरण के लिए अपने सामाजिक सन्देश का योगदान किया होता, और हिन्दू धर्म ने भी अपने इस सहयोगी धर्म को अपना सहिष्णुता का दर्शन देकर उससे सहर्ष सामाजिक समत्व का पाठ लिया होता। पर वस्तु स्थिति भिन्न थी। भारत में इसलाम उन आक्रान्ताओं के द्वारा आया, जो इसलाम के अनुयायी होने का दावा तो करते थे, पर वस्तुतः जो व्यवहार में अपनी मध्य एशियाई बर्बरता प्रदर्शित करते थे, जिन्होंने भारत को रौंद डाला तथा हिन्दू धर्म का सत्यानाश किया। फल यह हुआ कि उन लोगों ने इसलाम को हिन्दुओं की आँखों की किरकिरी बना दी। यह धार्मिक और सांस्कृतिक सम्पर्कों के इतिहास में उन दुःखद अध्यायों में से एक था, जिन्होंने बहुत कड़वे फल प्रदान किये, पर जो,

एक दूसरे रूप में, मानव जाति के धर्म और संस्कृति के लिए महान् परिणाम देनेवाले कारण बन सकते थे। तथापि सामाजिक शक्तियाँ मानवी उन्मादों और आवेगों को अभिभूत कर लेती हैं; क्योंकि ज्योंही एक बार इसलाम यहाँ की जमीन में प्रतिष्ठित हो गया, त्योंही मेल और संश्लेषण का कार्य प्रारम्भ हो गया। उत्तर भारत के मध्य-युगीन महान् सन्तों के जीवन और कार्यों ने हमारे इतिहास में एक सुनहला अध्याय जोड़ा है। मोटे तौर पर उनके कार्यों में हिन्दू धर्म और इसलाम दोनों की छाप दिखायी देती है। अपने विचार और धर्म के क्षेत्र में उन्होंने हिन्दू धर्म से प्रेरणा ली और सामाजिक जीवन के क्षेत्र में इसलाम से। इतिहास के सामान्य चौखटे में कबीर, नानक, दादू और सूरदास का कार्य क्षणिक और आधारहीन मालूम पड़ सकता है, पर उनमें इस युग के हम लोगों के लिए एक नैतिकता और प्रेरणा निहित है। यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में इने-गिने व्यक्ति इस प्रकार की महान् गरिमामय उपलब्धियाँ हासिल कर सकते थे, तो फिर आध्यात्मिक स्थिरता और सामाजिक ऐक्य की दिशा में तथा उस लक्ष्य की सिद्धि में, जिसे विवेकानन्द 'मनुष्य-निर्माण' कहा करते थे, और भी महत्तर उपलब्धियाँ क्यों न हासिल की जा सकेंगी, यदि दोनों धर्म समझ-बूझकर, योजनावद्ध रूप से अपनी शक्तियों को रचनात्मक और सर्जनशील तरीके से नियोजित करें? ऐसे प्रयत्न को आधुनिक लोकतंत्र के सिद्धान्त और व्यवहार का बल प्राप्त होगा तथा विश्व की शक्तियों के संघटन से सहायता मिलेगी। इसकी गरिमा-मण्डित परिणति होगी एक ऐसे भारतीय राज्यतंत्र के विकास में, जो आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित होगा और जिसमें मानवता के कल्याण के लिए एक नैतिक उन्माद भरा होगा। क्या यही सभी धर्मों का उद्देश्य और लक्ष्य नहीं है? क्या इससे विश्व के महान् धर्मों के पैगम्बरों और प्रवर्तकों का हृदय आनन्द से उल्लसित न होगा? क्या यही आधुनिक विश्व-शक्तियों की स्वाभाविक परिणति नहीं है, जब वे मानवी लक्ष्यों की ओर नियोजित होती हैं? क्या परिणति भारत को समृद्ध, शक्तिमान् और राष्ट्रों का नैतिक नेता नहीं बनायेगी? क्या भारतीय इस्लाम और भारतीय ईसाइयत हिन्दू धर्म के समान ऐसी विशिष्ट विश्व-शक्तियों के रूप में नहीं उभर सकते, जिनमें अपने व्यक्तिगत वैशिष्ट्य बने हुए हों तथा विश्व के अन्य लोगों के लिए जिनका अपना एक सन्देश हो? भारतीय भूमि धर्म के लिए उर्वरा है। भारतीय, फिर वह हिन्दू हो या ईसाई या मुसलमान, गहरा धार्मिक होता है। संकीर्ण राजनैतिक आवेगों से युक्त हो इस धार्मिक भावना ने अपने सबसे बर्बर पहलुओं को उजागर किया है। आध्यात्मिकता और मानव-सेवा की निष्ठा से युक्त हो उसने सबसे उदात्त पहलुओं को भी प्रदर्शित किया है। अब यह हिन्दुओं और मुसलमानों का कर्त्तव्य है कि वे अपने धर्म को उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति करते देखें। एक सामान्य मुस्लिम को यह जान लेना चाहिए कि सैनिक विजेता और धर्मान्ध व्यक्ति पथभ्रष्ट और अस्वाभाविक प्रकृति के लोग हैं, जो अपनी रक्त-पिपासा और अहंकार को छिपाने के लिए इस्लाम का नाम लेते हैं। वे अधिक-से-अधिक सैनिक वीर हो सकते हैं, धर्म-वीर नहीं। उसे अपने धर्म के पीरों और फकीरों का आदर करना अधिक सीखना चाहिए, जिन्होंने मानव को उत्साह दिया है, आशा प्रदान की है। इससे भारतीय मुसलमान को दूसरे धर्मों के आचार्यों और सन्तों के प्रति समादर का भाव पोषित करने में सहायता मिलेगी। पैगम्बर आये थे मनुष्य को सावधान करने के लिए, वे आये थे जोड़ने के लिए। वे, अपने ही शब्दो में, मानवता के लिए आशीर्वाद

बनकर आये थे, शाप बनकर नहीं। एक मेमने-सी विनम्रता ले, पर साथ ही सिंह के समान बली और साहसी होकर, उन्होंने अपनी सारी शक्ति अपने लोगों के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में लगा दी। उन्होंने अपनी प्रवृत्तियों और कार्य-कलापों में ऐसा प्रकर्ष प्रदर्शित किया है, जो उनके अनुयायियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है।

एक दूसरे के प्रति आदर-भाव एक दूसरे की अच्छी बातों को अपनाने की प्रेरणा देगा। हमने अनुकरण के इस महान् सामाजिक तथ्य को लम्बे अरसे से दबाकर रखा है। इससे हमारे धर्मों और हमारे व्यक्तित्व में विकृति आ गयी है। अब समय आ गया है कि हम सामाजिक विकास के इस बाध्यताकारी तथ्य को खुले रूप से अपना कार्य करने दें। हमारी भावी अग्रगति की यही दिशा है। यह एक सुखद शकुन है कि भारतीय ईसाई धर्म ने राजनैतिक बाध्यताओं से जिन पर उसका कोई नियंत्रण नहीं था, उत्पन्न अपने प्रलोभनों को दबाकर इस महान् सत्य को समझा है और ज्ञानपूर्वक इस लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील है। इससे भारतीय ईसाइयत के लिए महिमामण्डित भविष्य सुनिश्चित है। भारतीय ईस्लाम कब अपने पास आएगा? भारतीय मुसलमान कब इस महान् धर्म को अपनी प्रतिभा का दान करना सीखेंगे और ऐसे पीरों और सन्तों की जमात पैदा करेंगे, जो सबकी श्रद्धा अपनी ओर आकर्षित करेंगे? जीवन्त धर्म की कसौटी है ऐसे सन्तों की पैदाइश, जो ईश्वर के तथा हमारे भीतर के सर्वोच्च सत्य के साक्षी है। यदि कोई धर्म 'असली राजनीति' के अधिक निकट सम्पर्क में अधिक लम्बे समय तक रहे, तो उससे उसकी आत्मा विनष्ट भी हो सकती है। समाज अपने नेताओं से आज इन मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता है। स्नायु अधिक समय तक घृणा और द्वेष का बोझ और तनाव नहीं सह सकते। स्वतन्त्र भारत द्वेष को भुलाकर मैत्री की पुकार करता है; वह सभी ओर प्यार की लहरें भेजने की मांग करता है।

स्वामी विवेकानन्द भारत की इस महिमामयी नियति पर विश्वास करते थे और उसकी उपलब्धि के लिए वे अनवरत कार्य करते रहे। इस कार्य को विरासत के तौर पर वे हमारे लिए छोड़ गये हैं। वे जानते थे कि भारत की धरती पर धर्मों के ऐसे सम्मिलन से कितने आशीर्वाद की वर्षा होगी! हिन्दू धर्म और इस्लाम के मिलन और परस्पर आदान-प्रदान पर उन्होंने अपने एक मुसलिम मित्र को जो पत्र लिखा है, उसे जवाहरलाल नेहरू एक असाधारण पत्र की संज्ञा देते हैं। (द डिस्कवरी ऑफ इण्डिया, पृष्ट ४०३, पाद टिप्पणी)। वह पत्र १० जून १८९८ का लिखा हुआ है। मैं यही उत्तम मानता हूँ कि उस पत्र को पूरा का पूरा यहाँ पर उद्धृत कर दूँ—

"प्रिय मित्र—आपका पत्र पढ़कर मैं मुग्ध हो गया और मुझे यह जानकर अति आनन्द हुआ कि भगवान् चुपचाप हमारी मातृभूमि के लिए अभूतपूर्व चीजों की तैयारी कर रहे हैं।"

"चाहे हम उसे वेदान्त कहें या और किसी नाम से पुकारें, परन्तु सत्य तो यह है कि धर्म और विचार में अद्वैत ही अन्तिम शब्द है और केवल उसी के दृष्टिकोण से सब धर्मों और सम्प्रदायों को प्रेम से देखा जा सकता है। हमें विश्वास है कि भविष्य के प्रबुद्ध मानवी समाज का यही धर्म है। अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दुओं को यह श्रेय प्राप्त होगा कि उन्होंने इसकी सर्वप्रथम खोज की। इसका कारण यह है कि वे अरबी और हिब्रू दोनों जातियों से अधिक प्राचीन है। परन्तु साथ ही व्यावहारिक अद्वैत-

वाद का, जो समस्त मनुष्य-जाति को अपनी ही आत्मा का स्वरूप समझता है, तथा उसी के अनुकूल आचरण करता है। त्रिकास हिन्दुओं में सार्वभौमिक भाव से होना अभी भी शेष है।"

"इसके विपरीत हमारा अनुभव यह है कि यदि किसी धर्म के अनुयायी व्यावहारिक जगत् के दैनिक कार्यों के क्षेत्र में, इस समानता को योग्य अंश में ला सके हैं, तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुयायी हैं। यद्यपि सामान्यतः जिस सिद्धान्त के अनुसार ऐसे आचारण का अवलम्बन है उसके गम्भीर अर्थ से वे अनभिज्ञ हैं, जिसे कि हिन्दू साधारणतः स्पष्ट रूप से समझते हैं।"

"इसलिए हमें दृढ़ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और विलक्षण क्यों न हो, परन्तु व्यावहारिक इसलाम की सहायता के बिना, मनुष्य-जाति के महान् जनसमूह के लिए वे मूल्यहीन है। हम मनुष्य-जाति को उस स्थान पर पहुँचाना चाहते है, जहाँ न वेद है, न बाइविल है, न कुरान; परन्तु वेद बाइविल और कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है। मनुष्य-जाति को यह शिक्षा देनी चाहिए कि सब धर्म उस धर्म के, उस एकमेवाद्वितीय के भिन्न-भिन्न रूप है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मो में से अपना मनोनुकूल मार्ग चुन सकता है।

हमारी मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतो का सामंजस्य। हिन्दुत्व और इस्लाम। वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर—यही एक आशा है।

"मैं अपने मानस-चक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ, जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और ओजस्वी रूप में वेदांती बुद्धि और इसलामी शरीर के साथ उत्थान होगा।"

"सर्वदा मेरी यही प्रार्थना है कि प्रभु आपको मनुष्य-जाति की सहायता के लिए, विशेषतः हमारी अत्यन्त दरिद्र मातृभूमि के लिए शक्ति सम्पन्न यंत्र बनावे। —भवदीय, स्नेहबद्ध विवेकानन्द" (विवेकानन्द साहित्य, षष्ठ खण्ड पृष्ठ ४०५-६)।

ऐसा भारत जो आध्यात्मिक दृष्टि से संहत है, जिसमें आर्थिक सम्पन्नता और सामाजिक स्थिरता है और जो नीतियुक्त उत्साह से भरा हुआ है, विश्व-घटनाओं में एक अतुलनीय शक्ति सावित होगा। अपने देश के भविष्य के सम्बन्ध में यही स्वामी विवेकानन्द का सपना था। संसार भारत से वहुत कुछ आशा करता है। सभ्यता की स्थिरता प्रवल विश्व-ताकतों को एक नैतिक और आध्यात्मिक दिशा देने पर निर्भर करेगी। संसार पुकार रहा है; क्या भारत नहीं सुनेगा और उत्तर नहीं देगा ? विवेकानन्द विश्वास करते थे कि वह दे सकता है और देगा। स्वतन्त्र भारत उस विश्वास और दृष्टि को ग्रहण करे और आगे बढ़ चले। उठो ! जागो ! और लक्ष्य की प्राप्ति तक रुको मत।

□

पवित्र बनने के प्रयास में यदि मर भी जाओ, तो क्या; सहस्र बार मृत्यु का स्वागत करो। हृदय न खोना। यदि अमृत न मिले, तो यह कोई कारण नहीं कि हम विष खा लें।

—स्वामी विवेकानन्द

शिकागो धर्म सभा में स्वामी विवेकानन्द

—राजेन्द्र बहादुर सिंह राजन

आया समय विवेकानन्द के/सम्भाषण का
तो वे निर्धारित स्थल
पर आकर बैठे,
पलक बन्द कर, श्री गुरु पर पूर्णाश्रित होकर
ज्ञान-सिन्धु के अन्दर ही
वे जाकर बैठे।
सूर्य-प्रभा से मंडित उनका
वह मुखमण्डल
जिसे देखकर दर्शकगण
मनमुग्ध हो गये।
"वे क्या कहें ?" सोचकर
उनके शब्द हृदय में
अल्पकाल के लिए
सहज अवरुद्ध हो गये।
गैरिक वसन देखकर उनका/वहाँ उपस्थित
जन-समुदाय
हो गया मन ही मन
आकर्षित,
कुछ कहने से पूर्व उन्होंने
अभ्यन्तर में
गुरुवर को सद्भाव-पुष्प
कर दिये समर्पित,
ऊषा की किरणों सा उनके
अन्तराल से
शब्द-रश्मियां निकल
रहीं थी धीरे-धीरे
सुनकर प्रमुदित हुए सभी
श्रोतागण ऐसे
जैसे उन्हें मिले हों
अगणित मोती-हीरे।
भाषा, शिल्प और शैली
एवं प्रस्तुति ने
श्रोताओं के मन-मन्दिर को
किया प्रज्वलित,
जैसे तिमिर दूर कर इन्दु
किया करता है
निशा प्रज्वलित।
जहाँ अन्य वक्ताओं ने
निज धर्म जाति की
गुणगाथा गा, अन्य सभी को
हां दुत्कारा,
वहीं विवेकानन्द ने सविनय
सर्वधर्म को
मात्र सनातन धर्म
मानकर ही स्वीकारा।
जीवन, धर्म विश्व की
व्याख्या कर विवेक से
प्रेम, शांति का मार्ग
उन्होंने सहज बताया,
अनुभव और युक्तियों से ही
महाशून्य का
सहज, सुबोध, सुग्राह्य अर्थ
सबको समझाया।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के संमरण

—स्वामी विजयानन्द

[प्रस्तुत निबंध लन्दन के रामकृष्ण वेदान्त सेंटर द्वारा प्रकाशित द्विमासिक पत्रिका 'वेदान्त' (VEDANT) के अक २६८ (मार्च-अप्रैल, १९९६) तथा अंक २७० (जुलाई-अगस्त, १९९६) में प्रकाशित संस्मरणों का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मठ, हैदराबाद में कार्यरत रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के वरिष्ठ साधु—स्वामी ब्रह्मेशानन्द। —सं०]

भवगदावतार श्रीरामकृष्ण के मानसपुत्र तथा मेरे महान् गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द जी को प्रणाम् कर मैं कुछ बातों का वर्णन कर रहा हूँ जो मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हो गई हैं।

मैं ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी का दर्शन सर्वप्रथम १९१६ ई० में किया था। उस समय मैं एक विद्यालयीन छात्र था। मैं आदर्शवादी था और भावुकतापूर्ण देशभक्ति से पूर्ण था। इसके अतिरिक्त देश की सेवा के सम्बन्ध में मेरे और भी कई अस्पष्ट विचार थे। स्वामी विवेकानन्द हमारे राष्ट्रीय आदर्श थे।

तब मुझे आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में कोई धारणा नहीं थी और न ही उसके प्रति कोई आकर्षण था। मुझ में एक दर्पयुक्त अज्ञेयवाद-सा था जो गर्वीले युवकों में प्रायः पाया जाता है। फिर भी मैं रामकृष्ण मिशन के मुख्यालय गया था क्योंकि यह संस्था राजनीति से पृथक् रहते हुए भी भारतीय युवकों को अपने सह भारत-वासियों की, विशेषकर रोगी, दरिद्र और निरक्षर भारतवासियों की सेवा में समर्पित होने की शिक्षा प्रदान करती थी। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस समय ईश्वर का अस्तित्व मेरी समस्या नहीं था। अपनी पढ़ाई और खेलकूद के अतिरिक्त मैं केवल यही जानने के लिए काफी व्यग्र था, वह भी बौद्धिक दृष्टि से, कि हम ब्रिटिश प्रभुत्व से कब मुक्त होंगे।

इन विचारों के साथ और रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों के प्रति कुछ श्रद्धा एवं प्रशंसा के भाव के साथ मैं उस दिन दोपहर को बेलुड़-मठ गया था। कई संन्यासी (स्वामी) गंगा के किनारे के मैदान में टहल रहे थे। बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि वे स्वामी ब्रह्मानन्द, तुरीयानन्द, प्रेमानन्द, शिवानन्द और सुबोधानन्द थे। मैं ने उन्हें दूर से देखा और मेरा ध्यान उनमें से प्रत्येक की विशिष्ट चाल की ओर आकृष्ट हुआ। लेकिन सभी ऐसी सहज और हल्की चाल से चल रहे थे जैसी मैं ने कभी नहीं देखी थी। सर्वोपरि स्वामी ब्रह्मानन्द जी की चाल मेरे मन पर सदा के लिये अंकित हो गई। वे ऊँचे कद के राजपुरुष से दिखाई दे रहे थे और सौ मीटर दूरी से देखने पर ऐसा लगता था मानो उनके चरण धरती की दूब को छू रहे हैं और नहीं भी छू रहे हैं। ऐसी चाल का वर्णन करना बहुत कठिन है। ऐसी भावुक उम्र में जब सभी सुन्दर वस्तुएँ किसी युवक को आकृष्ट करती हों तथा जब सौन्दर्य का अंकन उसकी उपयोगिता

अथवा मूल्य के द्वारा निर्धारित न होता हो, स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने मुझे केवल उनकी उस राजसी चाल द्वारा ही आकृष्ट किया। उस समय मुझे उनके पास जाने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई और न ही मैं ने उनसे कोई बातचीत की।

दूसरी बार मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द जी के दर्शन अधिक निकटता से किये थे और वह भी बेलुड़ मठ में ही। तब मैं ने संघ में प्रवेश कर ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर लिया था और ध्यान, धारणा एवं स्वाध्याय करना प्रारंभ कर दिया था। तब तक मैं यह नहीं जानता था कि वास्तविक आध्यात्मिकता क्या है पर इतना निश्चित रूप से अनुभव करने लगा था कि उस स्थान (बेलूड़ मठ) में विशुद्ध प्रेम है। संघ के उपाध्यक्ष स्वामी शिवानन्द जी उस समय बेलुड़ मठ के संचालक थे। अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द जी भुवनेश्वर में रहते थे तथा विभिन्न केन्द्रों का दौरा किया करते थे।

एक दिन हमें शुभ संवाद मिला कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी बेलुड़ मठ आने वाले हैं। उनके आने के पूर्व सारा मठ रूपांतरित हो गया। मुख्य द्वार के ऊपर एक नहबतखाना बनाया गया जिस पर बैठकर शहनाई वादक स्वागत संगीत बजाने लगे। झंडियों, नाना पुष्पों की मालाओं, केले के वृक्षों, नये जलपूर्ण मिट्टी के घड़ों पर सुसज्जित नारियल और केले के पत्तों आदि से मठ मार्ग तथा प्रवेश द्वार सजाये गये। संन्यासी एवं ब्रह्मचारियों ने नववस्त्र धारण किये थे, उनके चेहरों पर प्रसन्नता थी और वे प्रेम से व्यग्र दिखाई दे रहे थे। सारा मठ अपने राजा 'महाराज' की प्रतीक्षा कर रहा था। कार के हार्न की ध्वनि सुनते ही अनेक लोग आगे बढ़ गये और सारा मठ "जय, श्री गुरु महाराज की जय" की ध्वनि से गूँज उठा।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी और स्वामी शिवानन्दजी कूचबिहार के महाराज की बड़ी कार से उतरे और विशेष रूप से उनके बैठने के लिये रखी बेंच पर जाकर बैठ गये। इसी समय मैं ने अपने गुरु के पहली बार अच्छी तरह से दर्शन किये।

आह। उनके चेहरे से कैसी शांति, कैसी सौम्यता, कैसा माधुर्य निर्झरित हो रहा था! सबने एक-एक कर उन्हें प्रणाम् किया। उनके पीछे मैं भी था—एक अवर्णनीय भावना और अनुभूति के कारण आनन्द, भय, आदर और संभवत: एक नवीनतम प्रेम के स्फुरण की मिश्रित भावनाओं से मुझमें कम्पन और सिहरन हो रही थी। मेरे साष्टांग प्रणिपात करते समय स्वामी शिवानन्द जी को मैं ने कहते सुना, "राजा, इस लड़के के बारे में मैं ने तुम्हें लिखा था। यह हम सभी से प्रेम करता है और कहता है कि उसने तुम्हारे दर्शन किये हैं।" जब मैं ने महाराज के चरण स्पर्श किये तो वे बोले, "जब तुमने मुझे देखा था तब तुम अधिक मोटे थे न ?" इन शब्दों से मेरा भय जाता रहा और मैं ने इस सहजता से उत्तर दिया मानो मैं उन्हें सदा से जानता हूँ, "नहीं महाराज ! उल्टे आप अधिक मोटे दिख रहे थे।" महाराज और अन्य लोग हँस पड़े। मेरा अपने गुरु से परिचय हो गया और शरणागति, श्रद्धा, संघर्ष और अनुभूति के जीवन का प्रारम्भ हुआ।

मैं ने सुन रखा था कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी श्रीरामकृष्ण के मानस पुत्र थे और स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि उनकी अनुभूतियाँ बहुत गहरी तथा अथाह थीं और वे सदा "आनन्द समाधि" में निमग्न रहते थे। मैंने यह भी देखा कि स्वामी शिवानन्द जी स्वामी सारदानन्द जी आदि मठ के अन्य महान् स्वामी-गण का उनके प्रति कितना अधिक प्रेम और आदर का भाव था।

लेकिन उस समय मैं आध्यात्मिक-अनुभूति के बारे में कुछ नहीं जानता था और न ही मैं ब्रह्मानंद जी को उनके दैवी सद्‌गुणों के कारण चाहता था। मैंने केवल यही अनुभव किया कि उनके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ रहा था और वे भी मुझसे प्रेम करते थे। मुझे इस अभूतपूर्व अनुभूति का कोई कारण नहीं पता था और न ही मैं ने उसे जानने का प्रयत्न किया। मैं ने एक अद्‌भुत बात पायी और वह यह थी कि मठ में रहने वाले सभी व्यक्तियों को अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव हो रहा था।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के निवास काल के दौरान मठ में प्रतिदिन प्रातःकाल साढ़े चार बजे बहुत से साधु ब्रह्मचारी उनके कमरे में जाकर जप-ध्यान करते थे। भीतर अधिक स्थान न होने के कारण कुछ लोग बरामदे में बैठते थे। यह मौन-सभा लगभग तीन घंटे तक चलती थी। इसके बाद ४५ मिनट तक भजन होते थे। मैं बहुत कनिष्ठ था, अतः मैं भीतर जाने का साहस न कर दरवाजे के पास ही बैठता था। मुझे ध्यान करना नहीं आता था और मेरा जिज्ञासु मन शांत नहीं होना चाहता था। फिर भी, मुझे अच्छी तरह याद है कि न चाहते हुए भी मन पर एक अननुभूत शान्ति छा जाती थी जिसके फलस्वरूप मुझे आनन्द का अनुभव होता था। लेकिन प्रतिदिन उस आनन्दमय अवस्था का रसास्वादन करने के बदले मेरे गवेषक, जिज्ञासु स्वभाव ने इस दुर्लभ प्रशांति का कारण जानना चाहा। किसी बाह्य प्रभाव के सामने समर्पण न करने के मेरे गर्व के कारण मेरे मन में यह विचार उठा, "यदि मैं सामूहिक प्रार्थना और ध्यान के इस समय जानबूझकर विक्षेपकर विचार मन में उठाऊँ तो क्या होगा ?" इसके फलस्वरुप या तो मेरे पैरों में एक सरसराहट-सी होने लगती थी और वह इतनी बढ़ जाती थी कि कुछ समय बाद मुझे अपने स्थान से उठकर बाहर चला जाना पड़ता था, अथवा मेरे विपरीत प्रयासों के बावजूद मैं यह खेल अधिक देर तक नहीं खेल पाता था। एक शक्ति अथवा विचित्र से दबाव के फलस्वरूप मन शांत हो जाता था।

सर्वज्ञ ब्रह्मानन्दजी से यह मानसिक खेल छिपा नहीं रह सका। तीन दिनों के इन प्रयोगों के बाद उन्होंने मुझे अपने कमरे में बुलाया। बहुत मधुर शब्दों में उन्होंने मुझे कहा, "बेटा, यदि तुम्हें प्रयोग ही करना हो तो मेरे साथ एकांत में करो। लेकिन मेरा निवेदन है कि प्रातःकाल मत कर, जब सब ध्यान करते हैं। यदि उन्हें इस बात का पता चल जायेगा कि तुम विक्षेपजनक विचार प्रवाह पैदा कर रहे हो तो वे असंतुष्ट हो तुम्हें दण्ड दे सकते हैं।" यह सुनकर मैं बड़ा लज्जित हुआ। मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामी ब्रह्मानन्दजी मेरे अन्दर में उठ रही सभी बातों को जानते हैं और उनकी करुणा के निरंतर प्रवाह से ही हमारा मन शांत होता था और हृदय परमानन्द से पूर्ण हो जाता था।

दोपहर को समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्ति, यथा कृषक, वैज्ञानिक, चिकित्सक, वकील, लेखक' नाटककार, उपन्यासकार, युवा छात्र, सरकारी कर्मचारी, सेवक आदि मठ में आते थे। ये सभी लोग उनके पास एकत्र हो जाते थे और स्वामी जी के साथ उनका आनन्दपूर्ण वार्तालाप होता था। वार्तालाप के विषय व्यक्ति-विशेष की जीवन-पद्धति और व्यवसाय के अनुरूप भिन्न-भिन्न हुआ करते थे। उदाहरण के लिये एक दिन स्वामी जी ने महान् वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने कहा, महाशय, आप कब तक वनस्पतियों में जीवन की विभिन्न अभिव्यक्तियों का अध्ययन करते रहेंगे ? Minerals (धातु जड़ पदार्थादि) भी तो आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे चाहते हैं कि आप विश्व

को यह बताएँ कि उनमें भी वही ईश्वरीय जीवन विद्यमान है। सर्वत्र उसी जीवन्त परमात्म सत्ता की अभिव्यक्ति है। "प्रोफेसर बोस अपने गवेषण-कार्य की इस असाधारण प्रशंसा से बहुत प्रसन्न हुये और बोले, आपके आशीर्वाद से किसी दिन मैं यह भी कर सकूँगा।"

एक प्रसिद्ध नर्तक से उन्होंने कहा : तुमने बालकृष्ण का कितना सुन्दर नृत्य मुझे दिखाया। लेकिन अनुमति दो तो एक सुझाव दूँ : नृत्य करते समय अथवा अपने अन्य किसी भी कार्य के समय श्रीकृष्ण यह कभी नहीं भूलते थे कि वे ईश्वरावतार हैं। अत: जब तुम कृष्ण लीला का नृत्य करो, तो यह याद रखना। नर्तक ने उत्तर दिया, "महाराज यह असंभव है। मैं उस उच्च आध्यात्मिक भूमि पर कैसे आरोहण कर सकता हूँ?" महाराज ने कहा, "नृत्य के पहले कुछ देर के लिये श्रीकृष्ण का ध्यान कर लो। तब देखोगे कि स्वयं श्रीकृष्ण ने तुम्हारे देह-मन को अपने वश में कर रखा है और तुम्हारा नृत्य श्रेष्ठतर हो जाएगा।"

महाराज ने एक भक्त महिला से कहा, "अमुक की माँ! तुमने पिछले सप्ताह कैसा स्वादिष्ट भोजन बनाया था। लेकिन यदि तुम उसमें अमुक मशाला मिला कर अपने गृहदेवता को भोग लगाओ तो तुमको बहुत आनन्द मिलेगा। तुम अब तक सदा अपने परिवार के लिये खाना पकाती थीं, अब आगे से भगवान के लिये रसोई बनाओ और प्रसाद ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रों का भी कल्याण होगा।"

बड़े बरामदे के कोने से मैं इन अद्भुत भेंटों को देखा करता था और देखता था कि सभी को बहुत आनन्द मिलता है। भेंट के बाद सीढ़ी से नीचे उतरते समय सभी कहते थे कि महाराज मुझे दूसरों की अपेक्षा अधिक प्रेम करते हैं। मैं सोचता था, "ये लोग मूर्ख हैं। महाराज एक मानव होने के नाते किसी-न-किसी को अधिक प्रेम करेगें। यह कैसे सम्भव है कि वे सबको बहुत अधिक प्रेम करें ?" यहीं नहीं, आध्यात्मिकता सम्बन्धी मेरी अहं केन्द्रित भ्रांत मान्यता के कारण मैं सोचता था, "और ये कैसी मुलाकातें हैं? ध्यान, जप, प्रार्थना, अनासक्ति आदि के बारे में कोई निर्देश भी नहीं दिये गये। महाराज ने किसी को भी तप या साधना करने को नहीं कहा। और यहाँ सभी कहते हैं कि वे आध्यात्मिकता के अथाह सागर है। मुझे तो कुछ नहीं समझ पड़ता।" फिर भी मेरा उनके प्रति प्रेम निरन्तर बढ़ रहा था। मैं अनुभव करता था कि उनका प्रेम मुझे सामान्य धरातल से उठाकर मेरे अतीत को विस्मृत कर रहा है। बिना प्रयत्न के ही मुझे अधिकाधिक ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं पूरी तरह मठ का हूँ और महाराज तथा मठ के अन्य लोग मेरे अंतरंग मित्र और संबंधी हैं।

एक दिन, दिन के दो बजे उन्होंने मुझे अपने कमरे में बुलाया और मैंने जीवन में पहली बार वास्तविक आध्यात्मिकता के एक पक्ष की शिक्षा प्राप्त की। महाराज ने मेरा एक विदेशी नाम रखा था और अकेले में वे मुझे उस नाम से पुकारते थे। उन्होंने मुस्कुराते हुए और कुछ उपहास-सा करते हुए कहा, बेटा। जब तुम मेरा निरीक्षण करते हो, तब मैं भी तुम्हारा निरीक्षण करता रहता हूँ। क्या तुम जानते हो कि लोग वास्तविक आध्यात्मिकता नहीं समझते। इस संसार में अधिकांश व्यक्ति नहीं जानते कि विशुद्ध प्रेम तथा प्रेम करना क्या होता है। फिर भी सभी दूसरों से प्रेम चाहते हैं। वे मेरे पास इस आशा से आते हैं कि मैं उनकी समस्याओं का समाधान कर दूँगा। मैं उनसे कहता हूँ कि सब कुछ भगवान से कहो और वे ही उनका दुःख दूर

करेगें। सभी दुखी हैं, लेकिन सभी में कुछ न कुछ अच्छाई है। सम्भवतः उसको वे नहीं जानते। मैं उन्हें उनके इस शुभ पक्ष का विकास करने हेतु प्रोत्साहित करता हूँ, जिससे उन्हें अपने आप में विश्वास पैदा होता है। वे मेरे प्रेम का अनुभव करते हैं और उनका हृदय द्रवित हो जाता है। इससे वे मुझसे प्रेम करने लगते हैं और उस प्रेम तथा अपने आप में विश्वास को पुष्ट करते रहने से आध्यात्मिक जीवन के अधिकारी बन जाते हैं। बाद में जब भगवत्-कृपा से चित्तशुद्ध और चिरन्तन आनन्द की इच्छा उनमें पैदा होगी, तब मैं उन्हें आवश्यक निर्देश दूँगा। तब स्वच्छ और तैयार की गई भूमि में आध्यात्मिकता का अंकुर फूट उठेगा। लेकिन यदि मैं प्रारम्भ में ही धर्मोपदेश देने लगूँ तो अधिकांश अवसरों पर वे यही कहेगें, "इसमें नया क्या है? स्वामीजी जो कुछ कह रहे हैं वह सब हम पहले से जानते हैं, वह पुस्तकों में लिखा है।" इसके अतिरिक्त, मैं तुम्हें एक रहस्य बताता हूँ। यह जगत शुभ और अशुभ का मिश्रण है। केवल उनकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। अहंकार के आवरण के कारण लोग वास्तविक प्रेम को नहीं जान पाते। जगत् में इस अहंकार के अत्यधिक बढ़ जाने पर विशुद्ध प्रेम के जिज्ञासु या पुजारी परमात्मा से, पीड़ित मानवता की रक्षा करने हेतु प्रार्थना करते हैं। उनकी प्रार्थना सुनकर प्रेमस्वरूप परमात्मा अवतरित होते हैं। ईश्वरावतार का यही रहस्य है। लोगों के पास सब-कुछ है लेकिन अविद्या, अज्ञान, दंभ और अहंकार के कारण वे भगवान का साक्षात्कार करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते। विशुद्ध प्रेम इन सभी रोगों की औषधि है। विशुद्ध एवं आंतरिक प्रेम द्वारा तुम दूसरों की सहायता कर सकते हो। इस दिव्य प्रेम के बिना अन्य सभी साधनाएँ व्यर्थ हैं। अहंकाररहित प्रेम ही समस्त नैतिक अपवित्रताओं को दूर कर सकता है। समझे पुत्र? इसका अभ्यास करने का प्रयत्न करो।"

उस दिन मैंने इस उपदेश की गहराई को नहीं समझा था लेकिन मुझे ताजगी और बल प्राप्त हुआ था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि मेरी सच्ची आध्यात्मिक दीक्षा हुई है।

□

सत्य एक ही है, अन्तर है नाम और रूप का। एक ही जलाशय के तीन या चार घाट हैं। एक पर हिन्दू पानी पीते हैं—उसे 'जल' कहते हैं। दूसरे पर मुसलमान उसी को 'पानी' कहते हैं। और अंग्रेज तीसरे पर उसी को 'वाटर' कहते हैं। तीनों का तात्पर्य एक ही वस्तु से है, भेद केवल नाम का है। इसी प्रकार कुछ लोग सत्य को 'अल्लाह' के नाम से पुकारते हैं, कुछ 'गॉड' कहकर, कुछ लोग 'ब्रह्म' कहकर, कुछ 'काली' कहकर, तो कुछ लोग 'राम', 'ईसा', 'दुर्गा' तथा 'हरि' नाम लेकर पुकारते हैं।

—श्रीरामकृष्ण देव

तुलसी की प्रासंगिकता

—डॉ भरत मिश्र

सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास एक युग पुरुष थे। ये भगवान राम के परम् भक्त मात्र ही नहीं वरन् महाकवि, युगद्रष्टा और समाज सुधारक भी थे। इन्होंने अपनी कालजयी कृति 'राम चरित मानस' के द्वारा समस्त मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

सन्त नामदास ने लिखा है कि वाल्मीकि ने ही कलि कुटिल निस्तार हेतु तुलसी के रूप में इस धराधाम पर श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत १५५४ में जन्म ग्रहण किया। डॉ० ग्रियर्सन ने उन्हें भगवान बुद्ध के बाद भारत का सबसे बड़ा लोकनायक माना है।

लोकनायक वही व्यक्ति हो सकता है जो अपने को जनहित में समाहित कर सके। जनभाषा में ही रचना लिखकर जन-जन को तृप्त कर सके। संस्कृत में भी वे महाकाव्य सृजन कर सकते थे लेकिन उन्होंने अवधी भाषा में ही अपना अमूल्य ग्रन्थ 'रामचरित मानस' रचा।

तुलसी की भाषा सरल और सुबोध है। उनकी मान्यता थी कि वही व्यक्ति सर्वोत्तम है जो गंगा जल के समान सबका हित करे।

कीरति भनित भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कह हित होई॥

सुबोध काव्य ही जन-जन का कंठाहार बन सकता है।

सरल कवित बिमल सोई
आदरहि सुजान।
सहज बैर बिसराइ रिपु
जो सुनि करहिं बखान॥

गोस्वामी तुलसीदास कालजयी युग पुरुष हो गये हैं उनका 'रामचरित मानस' अमृत के समान है जो इसका सादर पाठ करता है वह इच्छित फल प्राप्त किये बिना नहीं रहता।

ऐसे महान् भक्त शिरोमणि तुलसी की आलोचना उनके जीवन काल में ही पंडितों ने की थी। उनकी हत्या करने का प्रयास भी हुआ था। ईश्वर की अनुकम्पा से कोई उनका कुछ बिगाड़ न सका। सुनते हैं जो चोर चोरी करने गया था उसने दो दिव्य पुरुषों को पहरा देते देखा। उसने अपना कुकर्म छोड़ सादा जीवन बिताना शुरू कर दिया। पुस्तक की परीक्षा हुई। आगम निगम पुराणों के नीचे तुलसी का रामचरित मानस रखा गया। मन्दिर के कपाट बन्द कर दिये गये, सबेरे देखा गया कि सबसे ऊपर रामचरित मानस विद्यमान है जिस पर भगवान भोले नाथ का हस्ताक्षर था। पंडितों ने तत्कालीन विद्वान् मधुसूदन सरस्वतीजी का विचार जानने के लिए 'रामचरित मानस' उन्हें दिया। मधुसूदन सरस्वती ने निम्नांकित विचार प्रकट किया।

इस काशी रूपी आनन्दवन में तुलसीदास चलता-फिरता तुलसी का पौधा है उसकी कविता

रूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर है, जिस पर श्रीराम रूपी भवँरा मड़ँराया करता है।

दुर्भाग्यवश आज भी विश्ववन्द्य तुलसी के कुछ निन्दक हैं। कुछ दिक्भ्रमित लोगों ने तो वर्षों पूर्व रामचरित मानस की प्रतियां भी जला दी थी। वे उन्हें ब्राह्मणवादी, सामन्तवादी व्यवस्था के संरक्षक, नारी निन्दक कहकर भर्त्सनाएँ किया करते हैं। कहना न होगा कि इससे तुलसी का तो कुछ नहीं बिगड़ता बल्कि वे अपनी ही अदूरदर्शिता प्रकट करते हैं।

तुलसी ने स्वयं लिखा है—

खल परिहास होई हित मोरा।
काक कहहिं कल कंठ कठोरा॥

वे निन्दा स्तुति से परे थे। यही कारण है कि जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है तुलसी का यश फैल रहा है। चाहे इंग्लैंड हो या फ्रांस, रूस हो या चीन, इण्डोनेशिया यो या मलेशिया, थाईलैंड हो या आयरलैंड, तुलसी के प्रशंसक मिल जायेंगे। यह बात दूसरी है कि कुछ मदान्ध लोग उनकी निन्दा कर रहें हैं फिर भी उससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। मेरी समझ में तुलसी आज अपने समय से भी अधिक प्रासंगिक मालूम पड़ते हैं। ५०० वर्ष पहले जब तुलसी ने भारत वर्ष में जन्म ग्रहण किया था तो राष्ट्र गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। मदान्ध शासक मंदिर तोड़ रहे थे, हिन्दू संस्कृति को रौंद रहे थे। हिन्दू जाति अपने को शक्तिहीन समझ रही थी। ऐसे समय में तुलसी ने अपने दिव्य महाकाव्य का नायक भगवान राम को बनाकर लोगों में प्रेरणा और नवोत्साह भरा। उत्तर भारत में उनकी रामचरित मानस का लोगों ने पारायण करना शुरू किया। यह ठीक है कि आज का पढ़ा लिखा नवयुवक रामायण और गीता पढ़ने में अपना अपमान समझता है। लेकिन अभी भी गाँवों में अपढ़ व्यक्ति के मुँह से आप मानस की दो-चार चौपाइयाँ सुन सकते हैं। मेरा विश्वास है कि कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा आलोचना के बावजूद रामचरित मानस का सम्मान तब तक होता रहेगा जब तक एक भी विवेकशील व्यक्ति भारत में रहेगा।

एक विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि "आधुनिक सन्दर्भ में रामचरित मानस की उपयोगिता पर विचार करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि कोई भी साहित्य अपने युग की आधारशिला पर ही प्रतिष्ठित होता है। सामान्य साहित्य उस युग की समस्याओं को अभिव्यक्त कर आप्तकाम हो जाता है जब कि विशिष्ट साहित्य अनागत के लिए भी दिव्य संकेत दे जाता है। कहना न होगा कि गोस्वामीजी की मृत्युंजयी रचना में भी इतने सबल संकेत हैं कि आज के सन्दर्भ में भी उसकी उपयोगिता समाप्त नहीं होती।"

महात्मा तुलसीदास शुद्ध पर्यावरण के समर्थक थे। वे जानते थे कि हरा-भरा वृक्ष मानव के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। उन्होंने एक स्थल पर लिखा है कि शीतल, मंद और सुगंध वायु प्राणदायक है। वही स्थान सर्वोत्तम है जहाँ नदी, तालाब हों, पेड़-पोधे लगे हों जिन पर पक्षी विहार करता हो। चाहे अयोध्या हो या लंका, किष्किधा हो या कैलाश सभी स्थानों पर सुन्दर वृक्ष भरे पड़े थे। काकभुसुण्डी मानसरोवर के पास वृक्षों से भरे स्थानों पर ही रामचरित मानस पक्षियों को सुनाया करते थे। पीपल वृक्ष के नीचे ध्यान धरते और आम्रकुंज में ही मानस पूजा कर लेते।

पीपर तरू तर ध्यान सो धरई,
योग जाप पाकड़ तर करई।
आम छाह करि मानस पूजा,
तजि हरिभजन काज नहीं दूजा॥

जनक की पुष्पवाटिका का क्या कहना। तुलसीदास का पुष्पवाटिका वर्णन उनकी काव्यात्मक प्रतिभा का परिचायक है।

गुरुदेव विश्वामित्र की आज्ञा से राम लक्ष्मण ने जनक की पुष्पवाटिका के दर्शन कर परमानन्द प्राप्त किया। तुलसी ने बड़े ही सुन्दर और सशक्त शब्दों में इसका वर्णन किया है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :—

लगे विटप मनोहर नाना।
बरन-बरन बरबेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाए।
निज सम्पत्ति सुर रूखलजाए।
चातक कोकिल कीर चकोरा।
कूजत बिहग नटल कल मोरा।
मध्यबाग सरू सोह सुहावा।
मनि सोपान विचित्र बनावा।
विमल सलिलु सरसिज बहुरंगा।
जल खग कूजत गुंजत भृंगा॥
बागुतड़ागु बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्म आरामु यह जो रामहि सुख देत॥

एक अन्य स्थल पर रावण की वाटिका का वर्णन करते हुए लिखा है कि :—

वन बाग उपवन वाटिका सरकूप बापी सोहहीं।
नरनाग सुर गंधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहहीं॥

तुलसी के कुछ आलोचक यह कहते हैं कि आज के जनतांत्रिक युग में तुलसी द्वारा वर्णित सामन्ती प्रथा पर आधारित राजतंत्र की क्या आवश्यकता है। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ कि तुलसी के राम राज्य में सबके लिए समुचित व्यवस्था थी। कोई भी गरीब, दुःखी और अपढ़ नहीं था।

नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छन हींना।
अल्प मृत्यु नहिं कवनेहु पीड़ा।
सब सुन्दर सब बिरुज शरीरा॥

दशरथ और राम सिद्धान्त में भले ही राजा रहे हों लेकिन उनका दृष्टिकोण आधुनिक तथाकथिक जनतांत्रिक नेताओं से अधिक व्यापक और लोकोपकारी था। दशरथ चाहते तो बिना जनता की राय लिए भी राम को युवराज बनाने का आयोजन कर सकते थे लेकिन उन्होंने पंच-परमेश्वर का अभिमत जानकर ही यह निर्णय लिया था।

जौ पाँचहि मत लागै नीका।
करहु हरषिहियँ रामहि टीका॥

भगवान राम को जब युवराज बनाये जाने का समाचार मिला तब उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। उनके अनुसार ज्येष्ठ पुत्र को राज देना अनुचित है। तुलसी के शब्दों में :—

जनमें एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करन वेध उपबीत बिआहा।
संग-संग सब भए उछाहा॥
विमल वंस यहु अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

यहीं नहीं, भगवान राम ने साफ कहा कि जिस राजा के राज्य में जनता दुःखी हो उसे नरक में जाना पड़ता है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥

भगवान राम ने एक बार अपनी प्रजा को बुलाकर उनकी सहमति मांगी और अनुरोध किया कि वे अपना अभिमत निःसंकोच भाव से दें। अगर उनका सुझाव अनुचित हो तो वे निडर होकर विरोध करें।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी।
कहौ न कछु ममता उर आनी॥
जो अनीति कछु भाखों भाई।
तो मोहि बरजै भय बिसराई॥

नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई।
सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥

आज कितने नेता हैं जो जनता का ख्याल रखते हैं। कुछ हवाला काण्ड में तो कुछ चारा काण्ड में, कुछ अलकतरा काण्ड में तो कुछ शिक्षा काण्ड में ही फंसे हुए हैं। अपने काले कारनामों से उन्हें शर्म नहीं आती। सामाजिक न्याय के नाम पर जातीय विद्वेष फैला रहे हैं। राजनीति का बड़ी तेजी के साथ अपराधीकरण होता जा रहा है। जनतंत्र में भले ही लठैत और धनी लोग ही विजयी होते हैं। सच पूछा जाय तो अब यह जनतंत्र नहीं बल्कि प्लेटो के शब्दों भीड़तंत्र रह गया है।

कुछ लोग यह मानते हैं कि तुलसी नारी विरोधी थे। तुलसी तो स्त्रियों को देवी का स्वरूप मानते थे। उन्होंने लिखा है कि रावण और बालि दोनों ने ही अपनी पत्नी की बात नहीं मानी फल-स्वरूप दोनों का विनाश हुआ।

अतः गोस्वामीजी कहना चाहते हैं कि हमें विदुषी पत्नियों की सलाह माननी चाहिए। आज बहुत से लोग अपनी सुन्दर और विदुषी पत्नियों को छोड़ मृगतृष्णा में इधर-उधर घूमते रहते हैं। तुलसी नारियों के उच्छृंखलता के विरोधी थे न कि नारी वर्ग का। उन्होंने हर देवता के साथ-साथ देवी की आराधना भी की है। स्वयं उन्होंने अपनी पत्नी रत्ना की बात मानकर भगवान राम से प्रगाढ़ प्रेम किया इसलिए वे नारी के प्रति ऋणी थे न कि विरोधी। उन्होंने शूर्पणखा जैसी मनचला और ताड़का जैसी नर भक्षिका का विरोध किया न कि कौशल्या और सुमित्रा जैसी देवियों का। राम के द्वारा अभिशप्त अहिल्या का उद्धार कराकर उन्होंने नारी मुक्ति का द्वार खोल दिया।

पुनः नवधा भक्ति का वर्णन कर वे कहते हैं कि

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई।
नारी पुरुष सचराचर कोई॥
सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे॥

गोस्वामीजी ने अपने व्यावहारिक जीवन में भी जातिगत बुराइयों का अनुभव किया था। हम जानते हैं कि वे बचपन में ही अनाथ हो गये थे। सभी के यहाँ मांग कर खाना उनका काम था। कुछ लोगों ने उनकी हँसी उड़ायी, तब उन्होंने साफ कहा कि उन्हें कोई जाति विशेष से मतलब नहीं।

"धूत कहौ, अवधूत कहौ रजपूत कहौ
जोलहा कहो कोऊ॥
काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब; काहू की
जाति बिगारे न साऊ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाकौ
रूचै सो कहै कछु ओऊ॥
मांगि के खैबो, मसीत के सोइबो; लेबो
को एक न देबो दोऊ"॥

गोस्वामी तुलसीदास समस्त जगत को 'सिया-राम मय' मानते थे।

"सियाराम मय सब जग जानी। करऊँ
प्रनाम जोरि जुग पानी॥

ऐसे भक्त शिरोमणि उदारचेता तुलसी को जातिवादी कहना निःसंदेह ओछेपन का सूचक है।

सरकार जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाने के लिए अपार धन राशि खर्च कर रही है फिर भी लक्ष्य की प्राप्ति कोसों दूर है। तुलसी छोटे परिवार को ही सुख का आधार मानते थे। उन्हें पता था कि रावण और कौरव का विशाल परिवार भी उनके विनाश का एक कारण था। तुलसी के राम ने छोटे परिवार को ही अपनाया था। वे ही नहीं बल्कि उनके सभी भाइयों ने सीमित परिवार में आस्था व्यक्त की थी।

तुलसी ने लिखा है :—

।ई सुत सुन्दर सीता जाए।
।व कुश वेद पुरानन गाए।
दोई-दोई सुत सब भ्रातन केरे भये रूप
शील गुन घनेरे ॥

स्पष्ट है कि राजा के आचरण का ही प्रजा अनुसरण करती है। लगता है राम राज्य में सीमित परिवार की प्रथा प्रचलित थी। राम बहु-पत्नी प्रथा के विरोधी थे। उनके पिता राजा दशरथ को कई पत्नियाँ थीं। उन्होंने अनुभव किया कि एक पुरुष को एक ही स्त्री रखना उचित है इसलिए सीता परित्याग के बाद अश्वमेघ यज्ञ करते समय महर्षि वशिष्ठ के कहने पर भी उन्होंने द्वितीय शादी नहीं की बल्कि सीता की मूर्ति ही बनाकर काम चलाया गया।

भगवान राम लोकमत का बड़ा आदर करते थे। सीताजी निष्कलंक थी फिर भी एक सामान्य प्रजा की बात पर उन्होंने अपनी प्राण प्रिया जग-जननी सीता का परित्याग कर दिया। धरती पर ऐसे प्रजा रंजक शायद ही कोई पैदा हुआ हो। आज के नेता गलत काम करने पर भी गद्दी नहीं छोड़ते।

उनका विश्वास नैतिकता में नहीं लूट-पाट और तोड़-फोड़ में है।

सच पूछा जाय तो तुलसी के विचार आज भी अनुकरणीय है उनके विचारों का अनुसरण करे तो समाज में प्रेम और बन्धुत्व की धारा प्रवाहित हो सकती है।

(आर्यावर्त्त, पटना से साभार—सं०)

युवा मंच

युवकों के प्रश्न : स्वामी निखिलेश्वरानन्द के उत्तर

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
संपादक, रामकृष्ण ज्योत
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

प्रश्न—मन में बुरे भावों के उदित होने पर क्या करना चाहिए ?

(जी आई सी, चम्पावत का एक छात्र)

उत्तर—मन में बुरे भावों के आने पर अशान्त न हों, क्योंकि यह मन का स्वभाव है। जब तक हमलोगों का मन शुद्ध नहीं होता, तब तक यदा-कदा मन में बुरे विचार आते ही रहेंगे। ऐसी परिस्थिति में सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम ऐसे विचारों को महत्व न दें। इसके साथ ही, ध्यान, प्रार्थना और जप तथा सद्ग्रंथों के अध्ययन के द्वारा मन को शुद्ध करने का प्रयास करो। पूरब की ओर जाने पर पश्चिम स्वतः पीछे छूट जाएगा। अगर तुम बुरे विचारों पर ध्यान दोगे तो वे तुम पर हावी हो जाएंगे।

एक आदमी एक साधु के पास गया और उसने उनसे वह तरीका बताने की प्रार्थना की जिससे भूत-प्रेतों को वशीभूत किया जा सके। महात्मा ने उसे इसमें नहीं पड़ने की सलाह दी लेकिन उस आदमी ने एक न सुनी। अन्ततः उससे पिंड छुड़ाने के लिए महात्मा ने भूत को वशीभूत करने का एक आसान नुस्खा बताया, लेकिन चेतावनी दी—'तुम इस खास भाव पर ध्यान करो लेकिन सावधान! एक बन्दर है जो किसी को भूत को वश में नहीं करने देता। ज्यों ही तुम मेरे

बताये हुए तरीके पर ध्यान करने लगोगे, बन्दर आ उपस्थित होगा। किन्तु अगर तुम बन्दर को अपने मन में नहीं आने दो तो तुम भूत को वशीभूत करने में समर्थ हो सकोगे।'

वह आदमी घर लौटा और महात्मा द्वारा बताये हुये तरीके से ध्यान करने लगा। ज्यों ही उसने ध्यान करना शुरू किया, उसके मन में यह विचार आया—'मुझे अपने मन में बन्दर को नहीं आने देना है।' ज्यों ही यह विचार आया, उसके मानसिक क्षितिज पर बन्दर आ धमका! अतः अगर तुम यह सोचो कि बन्दर-भाव नहीं आवे तो बन्दर-भाव निरन्तर आ ही जाएगा। इसी तरह, यदि तुम बुरे विचारों को महत्व देते हो तो बुरे विचार तुम पर हावी हो जाएँगे। आपात् परिस्थिति में, दूसरा आसान तरीका यह है कि जब तक बुरे विचार चले नहीं जाते तब तक अपने किसी प्रिय पवित्र व्यक्ति के चित्र पर एकटक लगातार निहारते रहो। अनेक व्यक्तियों द्वारा इसका सफलता पूर्वक प्रयोग किया गया है। अधिक विस्तृत जानकारी के लिए अद्वैत आश्रय, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'मन और उसका निग्रह' नामक पुस्तक पढ़ो।

प्रश्न—क्रोध को कैसे नियन्त्रित करें?

(जी आइ सी, बराकाट का एक छात्र)

उत्तर—इस बात का विश्लेषण करने का प्रयास करो कि तुम क्यों क्रोधित हो जाते हो। यदि तुम पिछले महीने के उन अवसरों की सूची बनाओ जिनमें तुम क्रोधित हो गये थे, तो तुम पाओगे कि तुम्हारे क्रोधित होने का मुख्य कारण यह था कि कुछ चीजें तुम्हारे मन के अनुरूप नहीं हो सकीं। इसलिए, यदि हम यह स्मरण रखें कि इस संसार में प्रत्येक वस्तु सदैव हमारे मन के अनुकूल नहीं होगी और नहीं हो सकती, तब उत्तेजना या चिड़चिड़ाहट कम होगी। इसके अतिरिक्त, यदि हम प्रातःकाल ही (ब्रह्म बेला में) अपने मन को पवित्र भावों और विचारों से भर लें और यदि हमारा चित्त स्वच्छ एवं प्रशान्त है, तो कोई भी बाह्य परिस्थिति हमें अशान्त और विक्षुब्ध नहीं कर सकती। परन्तु यदि मन तनावों से भरा है, तो एक मामूली-सी गड़बड़ी भी हमें उद्विग्न कर देगी। इसलिए सत्साहित्य का अध्ययन, ध्यान और प्रार्थना के द्वारा अपने चित्त को शान्त और निर्मल रखने की चेष्टा करो।

पिछले महीने अपने क्रोधित होनेवाले अवसरों के मुनाफे और घाटे का लेखा तैयार करो। यदि तुम याद करो कि 'क्रोधित होने' और 'दूसरों को सुधारने के लिए क्रोध-प्रदर्शन' में अन्तर है तब तुम पाओगे कि क्रोध से केवल घाटा होता है। जब तुम्हारे मन में क्रोध की तरंग उठ रही हो उस समय के परिणामों को याद रखने की कोशिश करो।

पतंजलि ने अपने योगसूत्र में कहा है—'वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।'—(योगसूत्र, २, ३३) अर्थात् वितर्क यानी योग के विरोधी भाव उपस्थित होने पर उनके प्रतिपक्षी विचारों का बारम्बार चिन्तन करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द ने इस सूत्र की व्याख्या करते हुए कहा है, 'जब मन में क्रोध की एक बड़ी तरंग आती है, तब उसे कैसे वश में लाया जाय? उसके विपरीत एक तरंग उठाकर। उस समय प्रेम की बात मन में लाओ। कभी-कभी ऐसा होता है कि पत्नी अपने पति पर खूब गरम हो जाती है, उसी समय उसका बच्चा वहाँ आ जाता है और वह उसे गोद में उठाकर चूम लेती है; इससे उसके मन में बच्चे के प्रति प्रेमरूप तरंग उठने लगती है और वह पहले की तरंग को दबा देती है।'

एक आपातिक उपाय यह है कि ज्यों ही तुम्हें लगे कि क्रोध की तरंग आ रही है त्यों ही किसी ऐसे पवित्र मंत्र का, जिसमें तुम्हें श्रद्धा है, १० बार जप करने की चेष्टा करो।

एक लड़की हमारे एक केन्द्र में नियमित रूप से आया करती थी। वह हमारे संघ के अध्यक्ष महाराज से जो उन दिनों वहाँ आये हुए थे, मंत्र दीक्षा लेना चाहती थी। किन्तु उसकी माँ ने उसके इस प्रस्ताव का विरोध किया। वह लड़की हमारे एक साधु के पास आयी और रोना शुरू किया। साधु ने उसे अपनी माँ को आश्रम ले आने को कहा। उसकी माँ के आने के बाद साधु ने उसकी माँ के मन में उपजे संदेहों को, जिसके कारण वह आज्ञा देने से इन्कार कर रही थी, दूर किया। साधु से बातचीत के उपरान्त वह सन्तुष्ट थी और उसने अपनी पुत्री को दीक्षा लेने की अनुमति दो। एक वर्ष वाद, हमारे पूजनीय प्रेसिडेन्ट महाराज फिर उसी केन्द्र में पधारे। एक दिन सबेरे उस लड़की की माँ उन्हीं साधु के पास आयी और पूछा, 'मुझे ज्ञात हुआ है कि श्रद्धेय प्रेसिडेन्ट महाराज आ रहे हैं। क्या वे इस बार दीक्षा देंगे ?' साधु ने उत्तर दिया—'हाँ, लेकिन आप यह प्रश्न क्यों पूछ रही हैं ?' माँ ने कहा, 'मैं दोक्षा लेना चाहती हूँ और मैं चाहती हूँ कि मेरी अन्य तीन पुत्रियाँ भी दीक्षा लें।' साधु चकित थे। उन्होंने पूछा, पिछली बार आपने अपनी पुत्री की दीक्षा लेने का विरोध किया था और अब आप स्वयं दीक्षा लेना चाहती हैं, क्या बात है ?' माँ ने उत्तर दिया, बात यह है कि मेरी बड़ो बेटी, जिसने दीक्षा ली, बहुत भली थी। उसका एक ही दोष यह था कि वह अक्सर गुस्सा कर बैठती थी। परन्तु दीक्षा लेने के बाद उसके आचरण में विलक्षण परिवर्तन हो गया है। मैं एक वर्ष के अन्दर ही उसके स्वभावगत परिवर्तन से चकित हूँ। आप से साफ-साफ कहूँ तो मैं भो कुछ गर्म मिजाज की हूँ, इसलिए मैं भी अपने क्रोध पर काबू पाना चाहूँगी और मैं चाहती हूँ कि मेरी तीनों कनिष्ठ पुत्रियाँ भी दीक्षा से लाभान्वित हों।' इसलिए पवित्र मंत्र के जाप का मन पर बड़ा ही शान्तिदायी प्रभाव पड़ता है और यह मन के चिड़चिड़ापन का स्थायो समाधान सिद्ध हो सकता है।

प्रश्न—सफलता प्राप्त करने के लिए हमें अपने आत्म-उद्यम पर निर्भर रहना चाहिए या भाग्य पर ?

उत्तर—अपने आत्म-प्रयास पर निर्भर रहिए। आप परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे या नहीं, इसके लिए किसी ज्योतिषी के पास नहीं जाइए। अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति और समय को अपने भाग्य का पता लगाने में गँवाने की अपेक्षा घोर परिश्रम करने में लगाइए। ज्योतिषी के पास जाना दुर्बलता की निशानी है। हम ज्योतिष शास्त्र या हस्त रेखा शास्त्र को नकारते नहीं है, किन्तु भवितव्यता जानने में समय नष्ट करने से क्या लाभ है ? एक प्रसिद्ध कहावत है—

खुदी को कर बुलन्द इतना
कि हर तकदीर के पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे,
बता तेरी रजा क्या है ?

अपने आप को इतना सुदृढ़ कर लो कि तुम्हारा भाग्य लिखने के पहले ईश्वर तुम से स्वयं पूछे कि बता, तेरी इच्छा क्या है ?

भाग्य जैसो भी कोई चीज है। हम इसे अस्वीकार नहीं करते। किन्तु इस भाग्य का निर्माता कौन है ? वेदान्त को दृष्टि से हम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हैं। हमारा वर्तमान भाग्य हमारे पूर्व के कर्मों द्वारा निर्धारित हुआ है। यही सिद्ध करता है कि हमारा भावी भाग्य हमारे वर्तमान आत्म-उद्यम पर निर्भर करेगा। इसीलिए, भाग्य जानने में अपनी शक्ति और समय गँवाने की अपेक्षा अपने आत्म-उद्यम के द्वारा अपने भाग्य को सुधारने के लिए हमें अपनी समस्त ऊर्जाओं को एकाग्र करना चाहिए।

एक अपील

रामकृष्ण मठ
पो०-बेलुड़ मठ, जिला-हावड़ा
(प० बंगाल) ७११ २०२

जैसा कि आप में से अधिकांश लोग जानते हैं कि विश्वव्यापी रामकृष्ण भावधारा के संस्थापकों की पवित्र स्मृतियों के संरक्षणार्थ बेलुड़ मठ में एक संग्रहालय की स्थापना की गयी है, जिसका उद्घाटन १३ मई, १९९४ ई० को संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी के हाथों सम्पन्न हुआ था।

श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी, स्वामी विवेकानन्द तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों द्वारा उपयोग में लाये गये वस्त्र, पादुकाएँ तथा अन्य वस्तुएँ, उनके द्वारा लिखित पत्र और उनके द्वारा पढ़ी गयी पुस्तकों आदि को संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। संग्रहालय में संलग्न अत्याधुनिक पुराभिलेखागार में उपर्युक्त वस्तुओं को आधुनिकतम तकनीक की सहायता से संरक्षित किया जाता है। हमें आपको यह भी सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि विगत ४ फरवरी, १९९६ को पूज्य संघाध्यक्ष महाराज ने एक नयी तकनीकी दृष्टि से नियोजित, विशाल संग्रहालय तथा पुराभिलेखागार भवन की आधारशिला रखी।

वैसे अनेक व्यक्ति तथा संस्थाएँ अपने पास पड़ी ऐसी वस्तुएँ हमें दे रहे हैं, तथापि हम एक बार पुन: अपने भक्तों, संस्थाओं तथा जनसाधारण से यह अपील करते हैं कि वे अपने पास पड़ी इस तरह की किसी भी स्मरणीय वस्तु को बेलुड़ मठ के ट्रस्टियों अथवा अपने निकट स्थित हमारे किसी भी शाखाकेन्द्र को सौंप दें। हम एक बार पुन: दुहराते हैं कि यदि ये वस्तुएँ वैज्ञानिक पद्धति से संरक्षित नहीं की गयीं, तो वे समय के आघात को नहीं झेल सकेंगी और सदा के लिए दुनिया से विलुप्त हो जायेंगी। हम आपके हार्दिक सहयोग की अपेक्षा करते हैं और हम इसके लिए आपका चिर आभारी रहेंगे।

पुराभिलेखागार के कार्य, प्रस्तावित भवन का मॉडल तथा प्रदर्शित वस्तुओं के नमूनों के आधार पर बनाया गया १५ मिनट का एक वीडियो कैसेट बिक्रय के लिए उपलब्ध है जिसे रामकृष्ण संग्रहालय, बेलुड़ मठ और हमारे कुछ भारतीय तथा विदेश में स्थित केन्द्रों से प्राप्त किया जा सकता है।

स्वामी स्मरणानन्द
महासचिव

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर

छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार) दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय / महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी **स्वामी विवेकानन्द** के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भूतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

श्री लालू प्रसाद, माननीय मुख्यमंत्री, बिहार ने कृपापूर्वक स्वामीजी की प्रतिमा का शिलान्यास गत १ मार्च, १९९७ को किया है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुर्ननिर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी— यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित
आपका
(डॉ॰ केदारनाथ लाभ)
सचिव

१५ अप्रैल, १९९७

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.-१४-८७
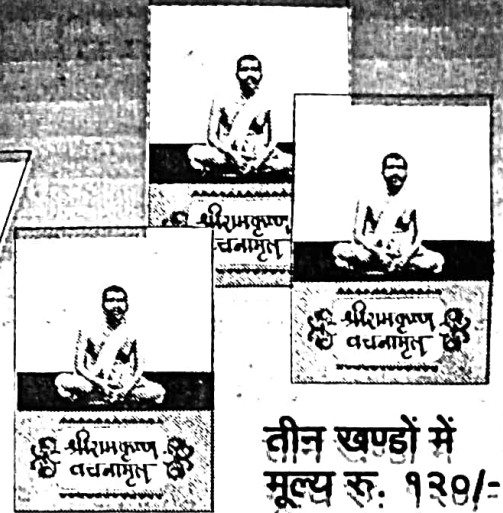
श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।